ISSN : 2321-3922
अक्टूबर – 2019
BIHHIN05394
वर्ष – 5 अंक–18

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर–2019

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी
कुन्दन अमिताभ

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–5, अंक–18
अक्टूबर – 2019

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.net
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–5, अंक–18
अक्टूबर – 2019

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः निःशुल्क हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जनवरी– 2020 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

कृपया अपनी रचनाएँ
kurtidev -010
में ही ई मेल से भेजें

अक्टूबर–दिसम्बर – 2019 वर्ष–5, अंक–18

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	क्षितिज पर एक पगडंडी	डॉ. राधेश्याम बन्धु	06
गीत	मनहर छन्द	छोटेलाल दास	07
समीक्षा	मदन डांगा की काव्य दृष्टि	डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा	08
कविता	हिन्दी हमारी	डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद पंजियार	09
समीक्षा	प्रवासी कवि की व्यापक अनुभूतियों में	दीपक गिरकर	10
समीक्षा	जिन्हें जुर्म–ए–इश्क पे नाज था	सुधा ओम् ढींगरा	11
विमर्श	मासूम और अबोध बच्चियों के साथ	प्रतिभा रामकृष्ण श्रीवास्तव	12
समीक्षा	शिक्षा का वैचारिक कुम्भ है	डॉ. डी.एन. प्रसाद	13
कविता	हिन्दी धारा, हिन्दी महिमा, पेड़ पुकारते हैं	डॉ. अनीता पंडा, डॉ. आशा सिंह सिकरवार	15
आलेख	राष्ट्रकवि दिनकर के काव्यगुरु	भगवती प्रसाद द्विवेदी	16
आलेख	मुक्तिबोध–मुक्तिबोध है	डॉ. श्रीनलिनी श्रीवास्तव 'शिवायन'	18
कविताएँ	अपना घर, सफर प्रभात से	सोनी सिन्हा	19
आलेख	समकालीन परिवेश में नारी विमर्श	आकांक्षा यादव	20
कविताएँ	प्रेम का प्रकाश होगा, मैं सुमन की आँजुरी हूँ	डॉ. केवलकृष्ण पाठक, ऊषा श्रीवास्तव	22
आलेख	बाजार लीला से प्रभावित	डॉ0 छोटेलाल गुप्ता	23
लघुकथा	एक अजपा जाप	रजनी शर्मा बस्तरिया	25
लघुशोध	आधुनिक काव्य की चिंताजनक स्थिति	गजानन माधव मुक्तिबोध	25
कविता	चित्रलेखा	शंकरलाल माहेश्वरी	28
आलेख	राष्ट्रीय चेतना में साहित्यकारों का योगदान	उत्तिमा केशरी	29
कहानी	सत्तर साल पहले	डॉ.गिरिजा शंकर मोदी	31
स्मृति	नौजवान भारत सभा	डॉ. ऊषा निगम	35
कविता	अब और नहीं	सुभाषचन्द्र झा	37
कहानी	दान–दहेज	तुलसी तिवारी	38
लघुकथा	पापड़ बिना भोजन सूना	संजय वर्मा 'दृष्टि'	40
लघुकथाएँ	टूटती मर्यादा, तौहफा	सविता मिश्रा 'अक्षजा'	41
नवगीत	गाँव में आकर रहे, आओ कुछ व्यवहार	जगदीश पंकज	42
कविताएँ	अच्छे दिन की आस, हम मानव हैं,'माँ', तरबूजों की माटी	शिव डोयले, डॉ. राम शर्मा, शिवानन्द सिंह	43
कविताएँ	हे प्रियतम, महासंग्राम, घटा गगन में घिरनेवाली	मंजु गुप्ता, कस्तूरी झा 'कोकिल'	44
आलेख	राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी	विजयवर्धन	45
कहानी	सोनमन काकी,	धर्मेन्द्र कुसुम	49
कविता	जिनगी आरॉ अखबार	अशोक शुभदर्शी	50
कहानी	खरसूप	सुधीर कुमार प्रोग्रामर	51
कविता	दुखी मानवता	डॉ. शिवनारायण	52

कलम, आज उनकी जय बोल

जला अस्थियाँ बारी–बारी
चिटकाई जिनमें चिनगारी
जो चढ़ गये पुण्यवेदी पर
लिए बिना गर्दन का मोल
कलम, आज उनकी जय बोल

जो अगणित लघु दीप हमारे
तूफानों में सब किनारे
जल–जलाकर बुझ गये किसी दिन
माँगा नहीं स्नेह मुँह खोल
कलम, आज उनकी जय बोल

पीकर जिनकी लाल शिखाएँ
उगल रही सौ लपट दिशाएँ
जिनके सिंहनाद से सहमी
धरती रही अभी तक डोल
कलम, आज उनकी जय बोल

अंधा चकाचौंध का मारा
क्या जाने इतिहास बेचारा
साखी हैं उनकी महिमा के
सूर्य चन्द्र भूगोल खगोल
कलम, आज उनकी जय बोल।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

प्रत्येक कला में सौंदर्य की सत्ता अनिवार्य है, इसे प्रायः सभी रचनाकार एवं कला–मीमांसक स्वीकार करते हैं, किन्तु वह सौदर्य मूलतः क्या है, इस बात को लेकर अलग–अलग विचार, वाद, वर्ग एवं संप्रदाय स्थापित हो गये हैं। कुछ सर्जक व कला विशेषज्ञ जहाँ सौंदर्य का अस्तित्व वस्तु में मानते हैं, वहाँ अन्य विद्वान् शैली या अभिव्यक्ति में, बिम्ब में या प्रतीक में, अलंकार में या छन्द अथवा ध्वनि में सौंदर्य की सत्ता खोजते हैं। सच कहिए तो कुछ–न–कुछ मात्रा में ये तत्त्व अवश्य रहते हैं, पर व्यक्तिगत रुचि एवं एकांगी दृष्टि के कारण अलग–अलग विचारक अलग–अलग को महत्व देते हैं। व्यावहारिक जीवन में वस्तुओं के बाह्य रूप–रंग के आधार पर हम जिसे सुंदर कहते हैं, वह कला का सौंदर्य नहीं है। कला का सौंदर्य वस्तुओं, रचनाओं और व्यक्तियों की स्थूल एवं बाह्य विशेषताओं पर आधारित नहीं होता, अपितु वह उनकी सूक्ष्म प्रवृत्तियों में निहित होता है। उन प्रवृत्तियों या गुणों का महत्व कलात्मक दृष्टि से इस बात में है कि वे सत्य की अभिव्यक्ति में कहाँ तक सहायक सिद्ध होती है। सत्य से तात्पर्य अनुभूति की सत्यता से है, जो अभिव्यक्ति पर आश्रित होता है। अनुभूति जितनी अधिक वास्तविक होगी, उतनी ही जीवन के अधिक निकट होगी; क्योंकि जीवन की निकटता ही सत्य की निकटता है। यही कारण है कि कुशल रचनाकार जीवन की प्रत्येक वास्तविकता ओर सत्य की प्रत्येक अनुभूति को ग्राह्य सिद्ध करते हुए सौंदर्य की व्यापक कल्पना प्रस्तुत करते हैं।

आज की सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियाँ अपने आपमें इतनी विकृत हो चुकी हैं कि वे साहित्य को कोई गति या प्रेरणा नहीं दे सकतीं। महादेवी वर्मा कहती हैं–''एक ओर समाज पक्षाघात से पीड़ित है और दूसरी ओर धर्म विक्षिप्त। एक चल ही नहीं सकता, दूसरा वृत्त के भीतर वृत्त बनाता हुआ एक पैर से दौड़ लगा रहा है।'' सामाजिकता और आध्यात्मिकता के स्थान पर आधुनिक युग में राष्ट्रीयता और राजनीति भी प्रेरणा स्रोत बनी, पर वह भी साहित्य को कोई ठोस तत्त्व नहीं दे सकीं। इसका मूल कारण यह है कि स्वयं राजनीति के क्षेत्र में इतनी विचारधाराएँ एवं आदर्श विद्यमान हैं कि वे सदा एक दूसरे के विरोध में ही अपनी शक्ति नष्ट कर रहे हैं। अनेक साहित्यकार आज किसी भी विचार, योजना, आदर्श या मूल्य के साथ प्रतिबद्ध होना अपनी बुद्धि के साथ अन्याय मानते हैं, आस्था को प्रतिबद्ध की संज्ञा देते हुए उसका तिरस्कार करते हैं ऐसे साहित्यकारों का मत है कि आस्था रूढ़िवादिता का द्योतक है। अतः वह व्यक्ति की प्रगति एवं विकास के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती है, पर वस्तुतः ऐसा नहीं है। आस्था में परंपरा और युगबोध दोनों का समन्वय होता है। वह जीवन–पथ के पथिक को एक ओर तो सुनिश्चित एवं सुस्थिर पथ का निर्देश करती है, तो दूसरी ओर गति का संचार करती है।

साहित्य या कला अपने समय के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को ही समाहित करके अपना वैशिष्ट्य नहीं निरूपित करती, बल्कि वह अगली पीढ़ी के लिए पगडंडी भी तैयार करती है। टॉलस्टाय कहते हैं कि ''जब हम किसी नये लेखक को पढ़ते हैं, तो हमारा प्रश्न होता है कि लेखक महोदय आप किस तरह के व्यक्ति हैं?आप उन लोगों से कैसे भिन्न हैं, जिन्हें मैं जानता हूँ?क्या आप कुछ ऐसा बता सकने में सक्षम हैं, जिसे मैं नहीं जानता?अगर कोई पुराना लेखक है, तो हम यह प्रश्न नहीं पूछ सकते कि आप कौन हैं, लेकिन हम उनसे यह जरूर पूछेंगे कि अबकी नया क्या है?इस बार आप जीवन को किस नजरिये से समझाओगे। अभिप्राय बिल्कुल स्पष्ट है, केवल यथार्थ का फोटोजनक चित्रांकन ही पर्याप्त नहीं होता यह सच है कि साधनों के साथ मनोभाव भी बदलते हैं। उसी प्रकार जीवन की विविध क्रियाओं के मूल्य निरंतर बदलते रहते हैं और साहित्य को समझने का ढंग भी बदल रहा है। हालाँकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐतिहासिक दृष्टि प्रतिष्ठित हुई है। उसे अस्वीकार कर नये साहित्य को ठीक–ठीक नहीं समझा जा सकता, किन्तु यह भी संभव नहीं है कि इस काल में 'बिहारी सतसई' लिखकर कोई उतना ही सफल हो जाएगा, जितना बिहारी हुए। वस्तुतः 'बिहारी सतसई' अब नहीं लिखा जा सकता। देश और विदेश से प्राप्त ग्रंथों के प्रकाशक ने भारतवर्ष के पढ़े–लिखे लोगों के चित्त में आत्मविश्वास का संचार किया है। बहुत–से पुराने विचारों और विश्वासों में सुधार हुआ, उसने प्रभावशाली साहित्यकारों को नवीन प्रेरणा दी। रूढ़ियाँ टूटीं, नवीनता अभिनव गौरव के साथ प्रवेश किया।

हमें वर्तमान जगत् के बीच से अपना रास्ता निकालना है, तो वहाँ के अनेक वादों और प्रवृत्तियों तथा उन्हें उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियों का पूरा परिचय हमें होना चाहिए। उन वादों की चर्चा अच्छी तरह हो, उन पर पूरा विचार हो और उनके भीतर जो थोड़ा बहुत सत्य छिपा हो, उसका ध्यान अपने साहित्य के विकास में रखा जाए। आज मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति अत्यधिक सजग, संघर्षशील तथा मुक्तकामी बना है, इसमें कोई शक नहीं। परिणामस्वरूप रूढ़ियों और परंपराओं से लोहा लेने की इच्छा रखते हुए वह आगे बढ़ना चाहता है। यह विद्रोह न केवल बौद्धिक है, बल्कि मानसिक और भावनात्मक भी है। आवेश में लिखने के अभ्यास होने के पूर्व ही पोथे लिखने लगते हैं, जिनमें वाक्य–विन्यास का सौंदर्य धराशायी हो जाता है। प्रकृति की पहचान न रहने के कारण उसका स्वरूप अस्वाभाविक हो जाता है। जबकि सब जानते हैं, साहित्य जीवन की रचना करता है और रचनाकार जीवन को सौंदर्य। यही कारण है कि साहित्य का मुख्य कार्य जीवन का भाष्य करना है। अतः जीवन के राजमार्ग पर चलनेवाला साहित्य बहुमुखी दर्पण है, जो जीवन की हर घटित घटना को देखता है और प्रतिबिम्बित करता है। जब हम साहित्य को समाज का दर्पण मानते हैं, तो समाज के साहित्य को भी मानना होगा।

साहित्य तो हमारे समाज के सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, आकर्षण–विकर्षण के ताने–बाने से ही बना हुआ है। इसमें मानव जाति की आत्मा का स्पंदन ध्वनित होता है। जहाँ एक ओर वह समाज की मानसिक बुभूक्षा की तृप्ति के लिए अपने रूप में उसे पोषक मानसिक आहार प्रदान करता है, वहाँ दूसरी ओर उसके अभावों, त्रुटियों, अक्षमताओं के निराकरण का प्रयत्न भी करता है। सधन्यवाद!

समीक्षा :

क्षितिज पर एक पगडंडी : मानवीय सरोकारों की विचारोत्तेजक कविताएँ

डॉ. राधेश्याम बन्धु,
बी–3/163,यमुना विहार, दिल्ली–53
मो.–9868444666

'क्षितिज पर एक पगडंडी' विख्यात कवि एवं समीक्षक डॉ वरुण कुमार तिवारी की प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह है। इसमें उनके तीन कविता संग्रह 'कुछ देर रेत पर चलकर', 'अपने होने का अहसास' और 'तीसरी दुनिया के लिए' की चुनी हुई कविताएँ दी गई हैं, जिनका चयन और संपादन डॉ. शैलेन्द्र कु. तिवारी ने किया है। कविताएँ चाहे कितनी सहज, सरल, भाषा, संवेदना की हो, जीवन और विश्व के तमाम बुनियादी प्रश्न और जटिलताओं के कारण प्रायः सहज नहीं रह पातीं। आज पूरे विश्व में अनास्था और अराजकता का जो त्रासद माहौल बन गया है, उसमें अपने आस्था और अहसास को बचाये रखना आसान नहीं है, फिर भी कवि ने उन्हें आहत होने से बचाया है या बचाये रखने के सूत्र जुटाये हैं। उनकी हर कविता की निर्मिति और प्रतीति में मनुष्य की इसी अदम्य आस्था की ऊर्जा विद्यमान है। शायद उनकी कविता की यही निरंतरता और सार्थकता है। किन्तु वहीं डॉ. शैलेन्द्र कुमार त्रिपाटी का कवि के बारे में यह भी मंतव्य है कि ''डॉ. वरुण कुमार तिवारी कवि के रूप में कविता के सहज मानवीय स्वरूप से जुड़े हैं। वह विचारधारा से मनुष्य बनाने के आग्रही नहीं हैं, बल्कि मनुष्य में विचारधारा की संस्कृति को जन्म देना चाहते हैं, ताकि वह अपने समय, संस्कृति, शिल्प के लघुत्तम से लेकर महत्तम तक से जुड़ सकें। कवि की इस संस्कृति यात्रा में मुनष्य की चिंता से लेकर 'ग्लोबल' होते विचार और शून्य होती संस्कृति पर भी उनका ध्यान जाता है। भाषा, शिल्प उनकी सहज, सामान्य अदायगी में कविता को वह विचारयुक्त अनुभव देना चाहते हैं।'' (क्षितिज पर एक पगडंडी, पृ. 17)

शायद विचारधारा के प्रति डॉ. तिवारी की असहमति का सबसे बड़ा कारण यही हो सकता है कि हिन्दी पट्टी के अधिकांश साहित्यकार साहित्य में प्रत्यक्षतः विचारधारा की अहमियत को अंग्रेजों के शासनकाल से ही प्रायः नकारते आ रहे हैं। शायद इसमें उनकी कोई गलती नहीं है; क्योंकि उनके शिक्षकों ने भी इसकी कोई शिक्षा उन्हें नहीं दी और न उनकी आवश्यकता पर ही कभी बल दिया। इस तथ्य का स्पष्टीकरण डॉ. रामविलास शर्मा ने भी अपने एक आलेख 'रामचन्द्र शुक्ल की हिन्दी आलोचना' में किया है और लिखा है ''कुछ शिक्षण संस्थान के हिन्दी विभाग के विद्वानों ने रामचन्द्र शुक्ल के साथ न्याय नहीं किया और अपने विद्यार्थियों को आचार्य शुक्ल के चिंतन की मौलिक यथार्थवादी विशेषताओं से सदैव दूर रखा। हिन्दी के अध्यापक हिन्दी कविता का सिर्फ छिलका ही विद्यार्थियों को थमाते रहे हैं और अंतर्वस्तु का सारस्वत विस्मृति के अंधेरे में ही छिपाते रहे हैं। ('नवगीत का लोकधर्मी सौंदर्यबोध' सं. डा. राधेश्याम बन्धु, पृ. 51)

आलोचना के संबंध में दिये गये इस विवेचन से यह सपष्ट है कि हिन्दी के अध्यापकों ने हिन्दी कविता की अंतर्वस्तु की वैचारिकता को सदैव दूर रखा। इसी का दुष्परिणाम है कि आज के अधिकांश कवि और अध्यापक कविता की विचारधारा की संस्कृति से अनभिज्ञ हैं, किन्तु वहीं यह भी सत्य है कि कोई कवि या साहित्यकार अपनी रचनाधर्मिता को विचारधारा की संस्कृति के बिना प्रासंगिक कैसे बनाए रख सकता है?विचार के बिना तो लोक ही नहीं, बल्कि परलोक को भी वह सही दिशा नहीं दे सकता। इस भूमंडलीकरण के युग में उपभोक्ता वादी संस्कृति के कारण जो सबसे बड़ा संकट आज उपस्थित हो उठा है, वह है विचारहीनता और संवेदनहीनता का संकट। इसी का 'साइड इफेक्ट' है आतंकवाद और इस आतंकवाद से केवल भारत ही नहीं जूझ रहा है, बल्कि विश्व के सभी बड़े देश अमेरिका, रूस, चीन, इंग्लैंड, फ्रांस, सीरिया आदि भी जूझ रहे हैं। क्या साहित्य की कोई भी विधा कविता या कहानी इस वैश्विक संकट से अप्रभावित रह सकती है?

सभी चाहते हैं कि हम चिंतामुक्त रहें। डॉ. वरुण कुमार तिवारी भी नहीं चाहते होंगे कि वैश्विक आतंकवाद की आहट और थरथराहट उनके घरों तक आए। फिर भी आपदा आती है। सिर्फ समस्याओं से मुँह फेर लेने से वे समाप्त नहीं हो जातीं और केवल विचारहीन होने से किसी संकट का हल नहीं निकलता। कोई भी आपदा वह चाहे प्राकृतिक हो या मानवकृत हो, उसके आने के पहले उसके कारणों तथा निवारण को जानना और उसका अनुसंधान करना मानवता की सुरक्षा की दृष्टि से हमारा बुनियादी दायित्व है। कविता की वैचारिक जागरुकता भी आसन्न संकट से लड़ने की हमें हिम्मत और सजगता प्रदान करती है। इसका इतिहास साक्षी है।

इस नजरिये से जब हम इस संग्रह की कविताओं से गुजरते हैं, तो हम पाते हैं कि इसकी अधिकांश कविताएँ सामाजिक चेतना से लैस हैं और बार–बार सामाजिक असंगतियों तथा विद्रूपताओं के बारे में हमें सोचने के लिए विवश करती है। इस संग्रह के प्रथम खंड 'कुछ दूर रेत पर चलकर' की एक कविता है 'आदमी बने रहने की खातिर'। इस कविता में एक सवाल उठाया गया है कि क्या 'खूँखार पूँजी' के डर से कोई जीना छोड़ देगा?इसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

इस आतंकी दौर में खूँखार पूँजी
हाथों में हथियार लिये
सतत दे रहा है पहरा
आदमी की संवेदना पर
और रौंद रहा रात–दिन बाजार
हमारे भाव–साम्राज्य को
अब किस विधि करूँ मैं
आदमी बने रहने की खातिर
निराश आत्माओं में जतन?(पृ. 37)

हम देखते हैं कि यह कविता 'खूँखार पूँजी के हथियारों के आतंकी दौर' को बेनकाब करने में पूरी तरह सफल है। आज यह किसी से छिपा नहीं है कि 'खूँखार पूँजी' ने पूरे विश्व के बाजार के अर्थतंत्र को ही नहीं, बल्कि उनके विचार और भाव साम्राज्य को भी अस्त–व्यस्त कर दिया है। आज बहुत–से गरीब और विकासशील देशों के सामने तो उनकी अपनी अस्मिता का सवाल ही उठ खड़ा हुआ है। आज मँहगाई की मार से आम जनता त्राहि–त्राहि कर रही है। जब बाजार भाव बढ़ते हैं, तो जीवन मूल्य गिरते हैं। विश्व पूँजीवाद का यही लक्ष्य है और इसीलिए सभी विकासशील गरीब देश उनकी आर्थिक मदद के नाम पर उनके इशारों पर नाचने के लिए मजबूर हैं। कवि भी इस नवसाम्राज्यवाद से अपरिचित नहीं है। इसलिए उनका मानना है कि सभी निराश आत्माओं को भी अपनी आजादी की रक्षा के लिए अपने जीवन मूल्यों और देशप्रेम को जीवित रखने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। यह कविता भले ही समकालीन कविता के साँचे में न ढली हो; लेकिन विश्वपूँजीवाद के खतरे से आगाह जरूर करती है।

इसी तरह इस संग्रह के दूसरे खंड 'अपने होने का अहसास' की एक

कविता है 'अंधेरे के खिलाफ'। यह कविता भी हमें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अंधेरे से लड़ना सिखाती है। किन्तु हिन्दी का हर प्रयोगवादी या परंपरावादी कवि 'रोमान्टिस्म' की जिंदगी जीने के लिए मजबूर है। जबतक उसके सिर पर कोई संकट आकर खड़ा न हो जाए, वह किसी भी वैचारिक तर्क को स्वीकार करना जरूरी नहीं समझता। फिर भी यह कविता अपनी अस्मिता और चेतना को पहचानना ही नहीं, बल्कि असंगतियों से लड़ना भी सिखाती है। पंक्तियाँ देखें–

शहर में जब पसर जाता है सन्नाटा
सड़कें हो जाती हैं सुनसान
निकल आता है रुका हुआ अंधेरा
अंधेरी सुरंग से
और करता है भयंकर अट्टहास
कि तत्क्षण बहने लगती है
मेरे भीतर एक सिमटी हुई नदी
अपनी तूफानी सोच में
तब हो जाता हूँ मैं भी
कई गुणा शक्तिशाली।(पृ. 120)

यह कविता भी अपनी जागरुकता से मनुष्य की यथास्थितिवादी सोच को झकझोरकर उसे जगाना और अपनी ताकत को पहचानने के साथ शक्तिशाली बनना भी सिखाती है। जब भी सुरंगों में छिपे आततायी अंधेरे झुंड–के–झुंड बाहर निकल पड़ते हैं, तो हमले की घटनाएँ शहर–शहर, महल्ले–महल्ले, बाजारों, झुग्गियों में तेज हो जाती हैं और सारा शहर थर्रा उठता है। ऐसे में नगरवासी भी आत्मसुरक्षा के बारे में सोचना शुरू कर देते हैं और बाहर निकलकर आततायियों के खिलाफ अट्टहास भी करते हैं और अपना विरोध भी दर्ज कराते हैं। इस प्रकार कवि विश्वास दिलाना चाहता है कि जब व्यक्ति की जान पर बन आती है, तो उसके अंदर सोयी, दबी–कुचली चेतना की नदी भी बाहर निकल पड़ती है और आत्मसुरक्षा के नाम पर कई गुना शक्तिशाली बन जाती है। इसी तरह तीसरे खंड 'तीसरी दुनिया के लिए' की एक कविता है 'पाब्लो नरूदा'। इसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

उसने अपनी धरती
अपने लोगों को
बेइन्तहा प्यार किया
प्यार करना सिखाया
और अपनी आजादी के लिए
लड़ना भी सिखाया।(पृ. 156)

'तीसरी दुनिया के लिए' खंड में अधिकांश स्मृतियों की की कविताएँ हैं, जिनमें समाज के ऐसे महापुरुषों को याद किया गया है, जो मरकर भी हमारे दिलों में आज भी जिंदा हैं और हमें आज भी जीना सिखाते हैं। 'पाब्लो नेरूदा' भी एक ऐसे ही लोकप्रिय सामाजिक नेता थे, जो लोग बेइन्तहाँ प्यार करते थे। उन्होंने 'आइला नेगा' की धरती से और उसके निवासियों से बेहद प्यार किया और अपनी आजादी के लिए लड़ना भी सिखाया। उनका मानना था कि अपनी आजादी और अपने देश के लिए लड़ने का जज़्बा हमें लोगों के दिलों में भी जिंदा रखता है और मरने के बाद भी तीसरी दुनिया में भी जिन्दा रखता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'क्षितिज पर एक पगडंडी' की अधिकांश कविताएँ मानवीय संवेदना, सामाजिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना के मूल्यों के कारण हमें बहुत दूर तक अपने साथ बनाए रखने में सफल हैं। कुछ कविताएँ हमें बार–बार पढ़ने, सोचने और स्मृति में रखने के लिए प्रेरित करती है। वे कविताएँ हैं–शब्द बेहद जरूरी हैं, भूख कुनमुनाती है, बच्चे चुप नहीं हैं, शब्द सहचर हैं, सिकुड़े हुए लोग, खंडहर होते हुए भी, जीवित रहेगी कविता, दुनिया अच्छी हो सकती थी मगर, अभी धूप बाकी है आदि। ये सभी कविताएँ कथात्मक बिम्बों के माध्यम से ऐसे लोकोत्तर सौंदर्य का दर्शन कराती हैं, जहाँ पहुँचकर आदमी सारा दु:ख, घुटन, चिंता, उलझन भूल जाता है। कवि का विश्वास है कि शायद स्मृतियों (नास्टेल्जिया) की कविताएँ भी हमारे लिए प्रेरणा का माध्यम बन सकती हैं। इस तरह स्मृतिबोध की कविताओं के बारे में मुक्तिबोध ने भी अपनी डायरी में लिखा है कि 'दृष्टि के रोमांटिक होने मात्र से भावना का ज्ञानात्मक आधार कमजोर नहीं होता। ज्ञानात्मक आधार कमजोर तब होता है, जब कवि समाज से प्राप्त अद्यतन ज्ञान की उपेक्षा करे।' (नवगीत और उसका युगबोध' सं. डॉ. राधेश्याम बन्धु, पृ. 8)

इसमें कोई दो राय नहीं है कि डॉ. वरुण कुमार तिवारी के इस संग्रह की सभी कविताओं का अद्यतन ज्ञानात्मक आधार किसी भी दृष्टि से कमजोर नहीं है; क्योंकि ये कविताएँ अनवरत मानवीय और सामाजिक सरोकारों की चिंता करती हुई प्रतीत होती हैं और असंगतियों से टकराना भी जानती हैं। शायद इन सहज किन्तु विचारपूर्ण कविताओं की यही ताकत है और सार्थकता भी है।

छोटेलाल दास
संतनगर, बरारी, भागलपुर-८१२००३

मनहर छन्द

शहर भागलपुर, कुप्पाघाट गंगातट ।
बाबा मे ँही ँ रहै छेलै, संत हो सजनवाँ ॥
जग में भ्रमण करि, शीत-घाम सहि-सहि ।
लोगऽ के चेताबै छेलै, नित हो सजनवाँ ॥१॥
झूठ चोरी नशा हिंसा, जारी सें छोड़ाइ करि ।
सदाचार गहवाबै, छेलै हो सजनवाँ ॥
मीन-मांस भोजन सें, लोगऽ के विरत करि ।
सतसंग करवाबै, छेलै हो सजनवाँ ॥२॥
विन्दु-नाद-ध्यान केरो, जुगती बताइ करि ।
मुक्ति-पंथ पकड़ाबै, छेलै हो सजनवाँ ॥
परम दयालु बाबा, जग में विख्यात भेलै ।
'लाल दास' गुण गाबै, नित हो सजनवाँ ॥३॥

पावन भागलपुर, मायागंज कुप्पाघाट ।
जहाँ में बिराजै छेलै, बाबा हो सजनवाँ ॥
गंगा के किनारे बाबाँ, कुटिया बनाइ करि ।
सतसंग करै छेलै, नित हो सजनवाँ ॥१॥
गंगा में नहाबै छेलै, गुफा ध्यान करै छेलै ।
पूर्ण सिद्ध होलै याँहीं, बाबा हो सजनवाँ ॥
भाषण-पुस्तक द्वारा, संत केरो मूल ज्ञान ।
जग में प्रचारि गेलै, बाबा हो सजनवाँ ॥२॥
घूमि-घूमि कष्ट सहि, सतसंग सेवा करि ।
पर उपकार करै, छेलै हो सजनवाँ ॥
ऐसे गुरु पाइ करि, ऐसे गुरु संग रहि ।
आपनो सुभाग मानै, 'लाल' हो सजनवाँ ॥३॥

मदन डांगा की काव्य दृष्टि

डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा,
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
मेदिनीपुर कॉलेज, ऑटोनोमस
(पश्चिम बंगाल) मो.–9434153501

हिन्दी कविता में अभिजात्य वर्ग से संघर्ष की शुरुआत निराला ने किया। इससे पहले साम्राज्यवादी ताकतों के विरुद्ध आवाज भारतेन्दु ने उठायी थी। भारतेन्दु की संघर्ष प्रणाली निराला से भिन्न थी। निराला शोषण, उत्पीड़न, अन्याय, अत्याचार, जात–पात पर प्रहार करते हैं। उसी तरह मदन डांगा भी अपने समय के कटुयथार्थ को व्यक्त करते हैं।

आजाद भारत किस तरह से कुर्सीप्रधान बन गया है। जिसमें आम जनता की हालत कुत्ता से भी बदतर है। देश को कोढ़ से भरकर उज्ज्वल करनेवाले लोग इस देश के नियंता हैं। यह देश भारत कभी कृषि प्रधान देश था, किन्तु आज–'भारत एक कृषि प्रधान देश नहीं, कुर्सी प्रधान देश है।'1

भारत आज विसंगतियों एवं विडम्बनाओं का समुद्र बन गया है। इस कारण कवि इसे कुर्सीप्रधान देश की संज्ञा देता है और राजनेताओं पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि पहले लोग सठिया जाते थे, अब कुर्सिया जाते हैं। यही कुर्सियाये हुए नेता देश की बिगड़ती दशा के जिम्मेदार हैं। आज चारो ओर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, धोखेबाजी का साम्राज्य है। ऐसे समाज की सबसे बड़ी उपज बेरोजगारी होती है। विश्वविद्यालय शिक्षित बेरोजगार की सेना का प्रशिक्षण केन्द्र बनने जा रहे हैं। वहाँ अंक बढ़ाने के लिए घूस चल रहा है, जाली डिग्रियाँ बिक रही हैं। सरकारी कार्यालय की इसी संक्रामक रोग के मुख्य केन्द्र बनते जा रहे हैं। कार्यालय की कार्य–प्रणाली का एक दृश्य देखें–'उधर दफ्तर में/ कुछ हवा ऐसी चल रही है/ कि बिना पेपरवेट रखे/ कागज तो कागज/ फाइलें तक उड़ जाती हैं/ पर ऑफिसियल बेइंग मशीन में/ सिक्के डालते ही/ फौरन निकल आती है।' (कुर्सी प्रधान देश)

देश की प्रशासन और न्याय व्यवस्था भी आदमी की हैसियत पर निर्भर है। गरीब चोरी करता है। दो चार रुपये घूस लेता है, तो वह चोर और घूसखोर कहा जाता है। पकड़े जाने पर सजा भुगतता है, किन्तु यही काम नेता, सरकारी अफसर धनवान, पूंजीपति करता है तो वह ईमानदार एवं परोपकारी बना रहता है। यह कैसी विडम्बना है कि अपराध की परिभाषा भी व्यक्ति की हैसियत देखकर निर्धारित की जा रही है। आज हम आजाद भारत में भ्रष्टाचारी में व्याप्त नेताओं अधिकारियों की तालिका बनायें तो कई खंडों में रचनावली–सी प्रकाशित होगी।

'योर्स फेथफुली' शीर्षक कविता में मदन डांगा राजनीति पैरवी पहुँची पर व्यंग्य करते हुए दिखाते हैं कि बिना प्रापर चैनल का आज कोई भी काम नहीं निकल सकता है। योर्स फेथफुली कविता का काव्य–नायक का बॉस वातानुकूलित कमरे में व्यस्त है। जिससे वह चीफ मिनिस्टर के पास प्रापर–थ्रू चैनल खत न लिखकर सीधे लिखता है। चीफ मिनिस्टर अपने बयान में कहा था कि हड़ताल पिरियड का वेतन भुगतान नहीं होगा। बड़ा ही उम्दा है। काव्य नायक निवेदन के साथ पूछता है कि पिछले 25 वर्षों में भाषण के अलावा आपने कौन–सा काम किया है?आपने वेतन क्यों लिया?मजदूर जो हड़ताल में काम कर रहे हैं, वह भी आपके कामों से मेल खाता है–'माशा अल्ला : भरी धूप में गला फाड़ना काम नहीं है?/ आनरेबल सर! भूखे प्यासे सड़क मापना काम नहीं है?/ रेस्पेक्टेडर! छोड़ गिरस्ती जेल भुगतना काम नहीं है?/ सर एप्लाई था किया सिर्फ रोटी की खातिर/ व्यर्थ अपने गोली दागी/ ...सर! भूख नहीं टाँगी जा सकती/ कभी पेंशन भी खूँटी पर/ सर! भूखी आँतें डिसिप्लिन में कब रहती है?/ तवारिख ऐसा कहती है।' (यह कैसा मजाक)

यह है आजाद का लोकतंत्र और लोक सेवक के साथ एक आम आदमी का वार्तालाप जो हकीकत है। हमारी सरकार और उसकी शासन–प्रणाली भी अजीब है। हमें मजदूरी माँगने पर गोली चलाई जाती है। अवकाश प्राप्त कर्मचारी को पेंशन मिलने के पहले ही जिस प्रणाली से गुजरना पड़ता है, वह इस जहाँ से ही गुजर जाता है।

देश में क्या संभव है और क्या असंभव है, इसपर मदन डांगा व्यंग्य प्रहार करते हैं। नौकरी मिलना जितना असंभव है, बाकी सब कुछ संभव है। नौकरियाँ सिफारिशवालों को ही मिलती हैं। मेहनत से पढ़ाई करने के बाद भी बेकारी, बेरोजगारी से युवा समाज को शिक्षा एवं सरकार से घृणा पैदा होती दिखता है। हमारे देश में राशनकार्ड, परमिट, डिग्रियाँ आदि को लोग मरने के बाद भी सुरक्षित रखकर मरते हैं, ताकि आनेवाली पीढ़ी यह जान सके कि आजाद देश में एक समय ऐसा भी था, जब परमिट और राशनकार्ड होने पर अनाज नहीं मिलता था। सिर छिपाने के लिए छप्पर नसीब नहीं था और बेरोजगारी का आलम ऐसा था–'जिस डिग्री को नौजवान/ दुल्हन की तरह घर लाता था/ उम्र भर साथ लिये–लिये फिरता था/ उस डिग्री से नौकरी नहीं मिलती थी।' (मरने के बाद)

आज तो वर्तमान समय में अगर आपका आधार लिंक नहीं है, तो आप देश के निराधार नागरिक हैं। बदलाव यही हुआ है कि सात दशक के आजाद भारत में राशनकार्ड, वोटरकार्ड, पेनकार्ड आदि के महत्व को आधारकार्ड ने कम कर दिया है। आज राशने लेने हेतु आम गरीब के पास आधार कार्ड होना अनिवार्य है। नेताओं की पेंशन चालू है, पर अटल सरकार ने सरकारी कर्मचारियों का पेंशन बंद करके देश की आर्थिक दशा में कौन–सा सुधार किया है, यह आज तक समझ नहीं सका हूँ।

भारतवर्ष में आधुनिक समय में महापुरुष शब्द का अर्थ बदल गया है। आज महापुरुष का मतलब राजनेता। राजनेता का जनप्रतिनिधि का शोषण, अन्याय एवं अत्याचार की पराकाष्ठा का भी दर्शन कराते हैं। ये आधुनिक महापुरुष अपना खाते हैं, अपना पीते हैं और अस्सी वर्ष की उम्र में भी पूर्ण पुरुष एवं जवान नजर आते हैं। हम इस तरह के महापुरुषों को बार–बार वोट देकर चुनते हैं–मदन डांगा इसपर दुःख जाहिर करते हुए लिखते हैं–'वोट देना/ दिल देने से महँगा पड़ा है/ पर बेशर्म चुनाव में/ फिर से खड़ा है/ चुनाव से पहले जो खादिम था/ चुनाव के बाद/ खुदा से भी बड़ा है।' (वोट देकर)

कवि यहाँ पर वोट देकर जिन नेताओं को चुनता है। वह नेता जब संसद और विधानसभाओं में कुत्ता से भी निम्न श्रेणी में पहुँच जाता है। वह खादिम से खुदा भले ही बनने की कोशिश करे, किन्तु उसकी निकृष्टतम कार्यों में समय बीतता है। वह कुर्सी पूजक बन जाता है। कवि इसपर लिखता है–'कुत्ते मनुष्यों के पाँव को चाट सकते हैं/ लेकिन कुछ मनुष्य/ कुर्सी के तलुए भी चाट सकते हैं/ और वे जो कुर्सी के तलुवे चाट सकते हैं/ किसी के भी पाँव चाट सकते हैं/ और स्वार्थवश काट भी सकते हैं/ कुत्ते की तरह।' यह हालात आज राजनीतिक तक ही नहीं, समाज के हर क्षेत्र में चाटने और काटने के रोग फैल चुके हैं।

वर्तमान समय और सामाजिक व्यवस्था में आदमी–आदमी से डर रहा है और मौत पहले ही मर रहा है। कवि जिंदगी को प्राथमिक स्कूल के बच्चे की भाँति जन्म और मृत्यु के बीच की जगह करना ही जिंदगी नहीं मानता है। जिंदगी का कुछ मकसद है गाँधीवाद की असफलता के बाद समाजवाद का नारा जोर–जोर से लग रहा है। समाजवाद दुहराते–दुहराते मुँह में छाले पड़ गये;

किन्तु अबतक नहीं आया। कवि इसपर लिखता है—'अच्छा तुम्हीं बताओ/ मैं फाइलों में उगाये गये गुलाब से/ अपने नासूर कबतक ढाकूँ/ कबतक स्लम के कीड़े को/ नास पुटों में जाने से रोकूँ।'

समाज में व्याप्त खोखलेपन से राष्ट्र खोखला हो रहा है। राष्ट्र की बिगड़ती दशा हेतु नेता, मंत्री, व्यापारी, पूँजीपति, धर्मगुरु एवं गाँव के मुखिया आदि जिम्मेदार हैं। समाजवाद का नारा लगाकर सत्ता पानेवाले परिवारवाद का जन्म बन बैठे हैं। देश में केवल वाद और नीति की आँधी चल रही है। समाज में व्याप्त समस्याओं से जनसमूह का ध्यान हटाने के लिए नित नये—नये जुमला आ रहे हैं। बेरोजगारी का सूचक गगन छूने पर है। नेताओं की दोगलापन पर महाकाव्य लिखे जा सकते हैं। गाँव से पलायन जारी है। कृषक आत्महत्या बनते दिख रहे हैं। पूँजीपति बैंक के ऋण से मनोरंजन करते हुए आम जन कीड़े—सा रेंगते हुए जीवन जीने को बाध्य। ऊपर से समाज में बहुजन का नारा देकर कुछ लोगों में सत्ता सुख की चाहत जो समाज को हर तरह से आहत करते दिख रही हैं।

वर्तमान समय में मदन डांगा की काव्यदृष्टि भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था सत्ता, सरकार, विरोधी आदि का जो चित्रण आज से 50 साल पूर्व किया है, वह आज भी प्रासंगिक और सटीक है। बल्कि हालात और अधिक बदतर हुए हैं।

कविता

हिन्दी हमारी

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद पंजियार
भागलपुर
9430507057

आत्म गौरव से जुड़े हिन्दी हमारी
राष्ट्र की पहचान हो हिन्दी हमारी
मातृ भू की वंदना का स्वर बने यह
भव्य भावों से भरे हिन्दी हमारी

है हमारी शान हिन्दी राष्ट्रभाषा
मातृ भारत भाल बिन्दी राष्ट्रभाषा
यह लगाती है गले सबको हृदय से
भेदती दीवार हिन्दी राष्ट्रभाषा

लें यही संकल्प हिन्दी ही लिखेंगे
देश—भाषा—माल में ग्रंथित दिखेंगे
करेंगे सम्मान सबका भावमूलक
लोभ के बाजार में हम क्यों बिकेंगे

देश की संस्कृति—कला का कोष हिन्दी
संत कवि की वाणियों का कोष हिन्दी
सूर, तुलसी, जायसी ने सृजा इसमें
राष्ट्र गौरव का बनी उद्घोष हिन्दी

प्रेम की भाषा खड़ी बोली हमारी
ऐक्य की भाषा खड़ी बोली हमारी
भारती के भाल पर रोली—तिलक यह
कोष संस्कृति का खड़ी बाली हमारी

फहर कर नभ में रहेगा ध्वज हमारा
गूँजती हिन्दी मुनादी विश्व सारा

बढ़ चला जब रथ न यह अवरुद्ध होगा
तोड़ती चट्टान को रुकती न धारा

छद्म छल के जाल में हिन्दी हमारी
हो रही बेहाल अब हिन्दी हमारी
राजनीतिक धूर्तता का दंश सहकर
सात दशकों से व्यथित हिन्दी हमारी

बात हिन्दी की नहीं दुख की कथा यह
राजनीतिक चाल से उपजी व्यथा यह
राष्ट्रभाषा की न विधिवत् मान्यता हो
क्या नहीं लज्जाजनक है सर्वथा यह

राष्ट्र की अभिमान हिन्दी राष्ट्रभाषा
स्वाभिमान महान हिन्दी राष्ट्रभाषा
घूमते जो लिए ध्वज अंग्रेजियत का
आईना उनको दिखाती राष्ट्रभाषा

जबकि हिन्दी प्रेमियों से लगी घिरने
चंद छाती पर लगे तब साँप फिरने
झेलते अपमान हम अंग्रेजियत का
देश की छवि क्यों न फिर तब लगे गिरने

राष्ट्र की भाषा सभी समृद्धि पाएँ
गले मिलकर सब प्रगति के गीत गाएँ
देश भाषा की बनायी जाय माला
मध्य हिन्दी बने प्रमुख, न द्वेष लाएँ

राष्ट्र के सम्मान की ही बात है यह
स्वाभिमान महान की ही बात है यह
राष्ट्रभाषा एक अपनी हो नहीं यदि
घोर लज्जा ग्लानि की ही बात है यह

राष्ट्र यह उन्नति शिखर पर कब चढ़ेगा
स्वप्न को साकार करने कब बढ़ेगा
राष्ट्र ध्वज—सा एक भाषा हो न अपनी
पूर्ण विकसित देश की छवि कब गढ़ेगा

प्रगति के सोपान चढ़ता देश है यह
शक्ति की पहचान बनता देश है यह
राष्ट्रभाषा प्रश्न उलझन में न डाले
गुत्थियों से खुद निपटता देश है यह

विश्व भाषा बन रही हिन्दी हमारी
व्याप्ति में है ढल रही हिन्दी हमारी
जब विरोधी स्वर कहीं देता सुनायी
भेदती भ्रमजाल तब हिन्दी हमारी

रहें पढ़ते आंग्ल भाषा आँख मीचे
अन्यथा होंगे प्रकति में बहुत पीछे—
मानसिक यह दासता जबतक रहेगी
आत्म गौरव भाव को फिर कौन सींचे।

समीक्षा

प्रवासी कवि की व्यापक अनुभूतियों में कविता– संग्रह इस समय तक

दीपक गिरकर,
28 सी, वैभवनगर,
कनाडिया रोड, इंदौर
मो–9425067036

पिछले दिनों कैनेडा के चर्चित वरिष्ठ कवि–साहित्यकार श्रीधर्मपाल महेन्द्र जैन का प्रथम कविता संग्रह 'इस समय तक' पढ़ने में आया। इसके पूर्व इनका एक व्यंग्य संग्रह–'सर! क्यों दाँत फाड़ रहा है?' प्रकाशित हो चुका है। लेखक की रचनाओं की विशेषता है कि बरसों से ये विदेश में रहकर भी अपनी हर साँस में भारत को जीते हैं। धर्मजी की कविताओं का फलक व्यापक है। इस कविता संग्रह में एक ओर प्रकृति सौंदर्य और मानवीय संबंधों की मधुरता है तो दूसरी ओर वे प्रजातंत्र की दुर्दशा और मनुष्यता के क्षय और विध्वंस के प्रति चिंतित दिखते हैं। इस संग्रह की कविताओं में कवि की और साथ में हमारी भी अनुभूतियों की प्रतिध्वनियाँ गूँजती हैं। यह एक ऐसा कविता संग्रह है, जो कई मुद्दों और विषयों पर प्रकाश डालता है। श्रीधर्मपाल महेन्द्र जैन अपने कविता संग्रह 'इस समय तक' में अपने जीवन के कई अनुभवों को समेटने की कोशिश की है। इस संग्रह में परिवार, रिश्ते, प्रकृति, प्रेम, गाँव और ग्रामीण जीवन की स्थितियों को अभिव्यक्त करती कविताएँ हैं। यह समकालीन कविताओं का एक सशक्त दस्तावेज है। इस संग्रह की हर रचना पाठकों और साहित्यकारों को प्रभावित करती है। इस संकलन में 78 छोटी–बड़ी कविताएँ संकलित हैं।

इस कविता संग्रह की पहली कविता 'सुबह' ही इतनी प्रभावशाली है कि पाठक अपनी उत्सुकता रोक नहीं पाता है। सुबह, प्रार्थना, माँ मैंने देखा, इस बार इत्यादि भावपूर्ण कविताएँ माँ की अहमियत पर प्रकाश डालती है। 'बेटी के जन्म पर', 'दो साल की वह', 'वह चाहती है', 'बड़ी होती बेटी' इत्यादि कविताएँ बेटी के प्रति एक पिता के लगाव को महसूस कराती है। प्रेम और रिश्ते में जीवंतता को अभिव्यक्त करती ये कविताएँ पाठकों के प्रेम, रिश्ते और मानवीय संवेदनाओं से अभिभूत कर देती है। 'साहबान!' एवं 'परेशान है चिड़िया' को उनके इस काव्य संग्रह की सबसे सशक्त कविताएँ कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। 'साहबान!' कविता की पंक्तियाँ 'रातो रात कहीं भाग गया है गाँव मेरा। साहबान! आपने कहीं देखा है मेरा गाँव!' नामक कविता पाठकों के अंदर तक झकझोर देती है। 'परेशान है चिड़िया' कविता की पंक्तियाँ 'बस्ती नहीं रही उसके लायक, न वह सीख पाई कंक्रीट में घोंसले बनाना, उसे चाहिए पेड़ बड़ा–सा, जो छुपा जा सके उसका बसेरा, छोड़ दी उसने बस्ती आदमी के लिए।' महानगरों में आजकल चारो ओर सिमेंट के जंगल ही जंगल दिखाई देते हैं। कवि ने इस कविताओं के माध्यम से आदमी के गिरते रूप को अभिव्यक्त किया है।

'भोपाल : गैस त्रासदी' कविता में व्यवस्था पर गहरा कटाक्ष है। इस कविता में कवि कहते हैं–'बीता हिंस्र शिशिर, बहुत हुए शोक के बारह दिन, बंसत आया, गया, झुलसने लगी धूप, पिघलने लगा सूरज, वे खस से छनकर आती हवा में, पीने लगे बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बोतलें, गाने लगे हवा में गीत की गंध है, शवों की लौ पर, वे सेंकने लगे शब्दों की रोटियाँ।' इस कविता में धर्मजी की बेचैनी और व्यथा महसूस की जा सकती है। संग्रह की कविताओं 'उस समय से' एवं 'संविधान' में व्यंग्य भी है, क्योंकि कवि एक व्यंग्यकार भी है।

'अ–अधिकार का' और 'रोना यातना नहीं है' इस संग्रह की ऐसी विशिष्ट रचनाएँ हैं, जो पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रू–ब–रू करवाती है। कविताओं में कवि के मन के भीतर चल रही उठा–पटक महसूस की जा सकती है। लेखक की रचनाओं में शोषित, असहाय व्यक्तियों के प्रति उनकी पक्षधरता उन्हें एक प्रगतिशील और जनवादी कवि की पहचान दिलाती है। धर्मजी की लेखनी का कमाल है कि उनकी रचनाओं में सहजता, आत्मिक संवेदनशीलता, जीवन का स्पंदन, भावों की तीव्रता प्रतिबिंबित होती है। इस संग्रह की कविताएँ हमें ठहरकर सोचने को मजबूर करती है। कवि की रचनाओं में आदि से अंत तक आत्मिक संवेदनशीलता व्याप्त है। कवि की रचनाओं में जीवन के तमाम रंग छलकते नजर आते हैं। 160 पृ0 की यह किताब आपको कई विषयों पर सोचने के लिए मजबूर कर देती है। यह सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है। यह काव्य संग्रह हिन्दी कविता के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाने में सफल हुआ है।

समीक्षा

जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज था

उपन्यास–पंकज सुबीर

सुधा ओम् ढींगरा
101, Guyman ct, morrsville
यू.एस.ए

ऐसा अद्‌भुत उपन्यास बहुत कम पढ़ने को मिलता है। हिन्दी साहित्य में समसामयिक, दुर्लभ, नाजुक, गंभीर और चिंतनशील विषय का कुशलता से निर्वाह किया गया है। गजब की किस्सागोई। जो विषय उपन्यास में उठाया गया है, वह विषय अपने आप में बहुत–सी भ्रांतियाँ, पूर्वग्रह, संशय, विरोधाभास और प्रश्न समेटे हुए है। जिन्हें लेकर बुद्धिजीवी अक्सर द्वंद्वमें और अंधविश्वास भ्रम में रहते हैं, जिसकी थाह सही अर्थों में कोई नहीं पा सका, मगर अपने–अपने तरीकों से उसे परिभाषित जरूर कर दिया गया है। उपन्यास धर्म की भ्रांतियाँ, पूर्वग्रहों, संशय और विरोधाभासों को स्पष्ट करता हुआ कई प्रश्नों के उत्तर देता है। पाँच हजार साल के इतिहास को नई दृष्टि से देखा और परखा गया है।

डैन ब्राउन ने 'डा विन्ची कोड' में बाइबिल की थियोरी और सलमान रश्दी ने 'स्टैनिक वर्सेज' में कुरान में तथ्यों के अभाव पर रोशनी डाली है। पर पंकज सुबीर ने अपने उपन्यास 'जुर्म–ए–इश्क पे नाज़ था' में सभी धर्मों के मूल तत्त्व, जिसपर हर धर्म टिका हुआ होता है, की पड़ताल की है। मूल तत्व जिसे हर धर्म में भुला दिया गया है, जिससे हर धर्म का स्वरूप ही भिन्न हो गया है। कागजों पर लिखे शब्दों के अर्थों को ही बदल दिया गया है। अफसोस की बात है कि भारतीय दर्शन, मीमांसा, जीवन पद्धति तक उसे भुला चुके हैं। पाँच हजार साल पहले के इतिहास, विभिन्न धर्मों पर किया गया शोध, हिन्दू धर्म की, इस्लाम की, यहूदियों की, क्रिश्चियन की, बौद्धों की, पारसियों की और जैन धर्म की तथ्यों से भरपूर ढेरों जानकारियाँ हैं। इतिहास को खंगालता, शोधपरक और बौद्धिक श्रम लिए उपन्यास का एक–एक पृष्ठ भीतर के ज्ञानचक्षु खोल देता है और उपन्यास हाथ से छूटता नहीं।

लेखक ने निर्लिप्त होकर, निष्पक्ष लिखा है। उपन्यास पढ़ते हुए महसूस होता है, जैसे किसी मलंग ने या सूफी लेखक ने लिखा है, जिसके लिए सब धर्म एक बराबर हैं। न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर। बस सभी धर्मों का मूल मंत्र प्रेम, विश्वास और इंसानियत की पैरवी की है। ये हैं तो हिंसा पैदा ही नहीं होती। दुःख की बात तो यही है कि आज धर्मों में यही मूलमंत्र गायब हैं और हिंसा बलवती हो गई है। अहिंसा तो भारतीय मूल्यों में भी मिटती जा रही है, जो विश्व में हमारी पहचान है। उपन्यास में लेखक ने दुनिया के सभी प्रमुख धर्मों पर बात की है, उनके सिद्धांतों पर चर्चा की है। हर धर्म के मूल पर पहुँचकर लेखक ने अपने पाठक के लिए जैसे किसी नई दुनिया के दरवाजे खोलने का काम किया है। जैसे–जैसे पाठक इस उपन्यास को पढ़ता जाता है, वैसे–वैसे उसके सामने नई–नई जानकारियों के दरीचे खुलते जाते हैं। लेखक समभाव से समदृष्टि रखते हुए हर धर्म के बारे में पड़ताल करता हुआ गुजर जाता है।

हालाँकि यह मेरा प्रिय विषय है और मैंने स्वयं भी इस विषय पर बहुत शोध किया है, पर इस उपन्यास ने मेरी तलाश और भटकन दूर कर दी। उपन्यास के आरंभ में ही लेखक ने एक लंबी चर्चा के माध्यम बहुत सारी बातों की व्याख्या की है। इस व्याख्या में उदाहरण व संदर्भ लिये हैं और उनके द्वारा धर्म को फिर से परिभाषित करने का कार्य किया है। यदि आप यह कहेंगे कि यह उपन्यास धर्म को खारिज करता है, तो आप गलत होंगे, यह उपन्यास असल में धर्म में आए हुए विचलन को, भटकाव को खारिज करता है। यह पहुँचने की कोशिश करता है उन विन्दुओं तक, जो दुनिया के हर धर्म में मानव के भले के लिए तय किये गये थे।

यह उपन्यास केवल एक उपन्यास नहीं है, यह असल में एक समीक्षा है कि हमारी यह मानव जाति पाँच हजार साल पहले अपने लिए क्या तय करके निकली थी और आज पाँच हजार साल बाद कहाँ हैं?यह उपन्यास परत–दर–परत पाँच हजार सालों की कहानी को स्पष्ट करता हुआ चलता है और उस कहानी के साथ फिर–फिर लौटता है आज की कहानी पर। भारत–पाक विभाजन पर बहुत–सी रचनाएँ सामने आयी हैं, लेकिन यह अपनी तरह का एक अनोख प्रयास है, जिसमें विभाजन के मूल कारणों तक जाने की कोशिश की गई है। इतिहास के पात्रों के साथ सवाल–जवाब करते हुए उस विभाजन के सूत्र तलाशने की कोशिश लेखक ने की है। यही कोशिश इस उपन्यास को अपने समय से आगे का उपन्यास और अत्यन्त विशिष्ट उपन्यास बना देती है। जो नई सूचनाएँ भारत और पाकिस्तान के विभाजन को लेकर सामने आती हैं, उन्हें पढ़कर पाठक दंग रह जाता है। यह उपन्यास उस धीमी प्रक्रिया का विस्तार से विश्लेषण करता है, जो अलगाववाद के रूप में पैदा हो रही होती है और जिसकी परिणति अंततः भारत–पाक विभाजन के रूप में सामने आती है। इस पूरी प्रक्रिया की बात करते समय लेखक किसी को क्षमा नहीं करता है। वह इतिहास के हर उस पात्र को कठघरे में खड़ा करता है, जो भारत–पाक विभाजन से जुड़ा है।

'जिन्हें जुर्म–ए–इश्क पे नाज़ था' एक रात का उपन्यास है। कस्बे और उसके पास की बस्ती में किन्हीं कारणों से दो सम्प्रदायों के मध्य दंगे शुरू हो जाते हैं। दंगे के कारणों को उपन्यास पढ़कर ही जाना जा सकता है। दंगों से पैदा हुई दहशत, असुरक्षा और खौफ की रात का इतना स्वाभाविक और बखूबी से चित्रण किया गया है कि भय का कहर बरपानेवाली रात बेहद वास्तविक लगती है और पाठक स्वयं को दंगे में फँसा हुआ महसूस करता है।

उपन्यास के मुख्य पात्र रामेश्वर का चरित्र शुरू से लेकर अंत तक बहुत परिपक्व और सुलझा हुआ रहता है। लेखक ने इस पात्र का निर्वाह बेहद कुशलता से किया है, बौद्धिकता से लबालब और संवेदना से भरपूर। धर्मा और सम्प्रदाय, राजनीति में धर्म का प्रवेश, देश का बँटवारा, कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा, आर.एस.एस., सांप्रदायिक दंगे और उनके पीछे की तथ्यपरक कहानियाँ दंगे के दौरान वह बताता है। रामेश्वर पात्र कहता है–इस कथन को जिस शैली में बाँधा गया है, वह अक्सर उन विदेशी उपन्यासों में देखने को मिलती है, जिनमें इतिहास के तथ्यों की पुष्टि की जाती है।'

जिला कलक्टर वरुण कुमार और एडिशनल एस.पी. भारत

यादव दो ऐसे पात्र हैं, जो सरकारी तंत्र और प्रशासन के प्रति विश्वास और आदर पैदा करते हैं। दंगे में वे सिर्फ इंसानियत धर्म को निभाते हैं और दंगाइयों को पछाड़कर पीड़ितों को बचाते हैं। युवा पीढ़ी उचित मार्गदर्शन के अभाव में कन्फ्यूज्ड है। धार्मिक ग्रंथों की शिक्षाएँ, व्याख्या और अर्थ ही धार्मिक नेताओं ने सुविधानुसार बदल दिये हैं, जिससे युवा पीढ़ी भटक गई है, सही अर्थों में धर्म को, उसकी परिभाषा को समझती ही नहीं। सोशल मिडिया मनगढ़ंत ज्ञान बाँट रहा है। ऐसे में 'जुर्म–ए–इश्क पे नाज़ था' ताजी हवा के झोंके–सा महसूस होता है, जो दिल दिमाग के सारे जाले साफ कर देता है।

मुख्य पात्र रामेश्वर द्वारा विकास को कही गई कुछ बातें मन–मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ती है। 'सुनो बच्चे! नफरत करना बहुत आसान है, लेकिन प्रेम करना बहुत मुश्किल है। इसलिए यह दुनिया आसान काम को ही चुनती है। मगर जीने के लिए असली आनंद मुश्किल काम करने में ही है। मार देना बहुत आसान है, मगर बचा लेना बहुत कठिन है। इसलिए ज्यादा लोग पहलेवाले आसान काम को ही चुनते हैं। एक बात याद रखना भीड़ जिस भी दिशा में की जा रही होती है, वह दिशा और वह रास्ता हमेशा गलत होता है। भीड़ कभी सही दिशा में नहीं जाती है, इसलिए क्योंकि भीड़ स्वयं नहीं चलती उसे चलाया जाता है।'

एक जगह रामेश्वर भारत को बताता है–'मुसलमानों ने अपनी कट्टरता नहीं छोड़ी और धीरे–धीरे यह हुआ कि हिन्दू जो दुनिया के दूसरे धर्मों के मुकाबले में कम कट्टर धर्म था, वह भी कट्टर होता चला गया। हिन्दुओं ने धार्मिक कट्टरता का पाठ मुसलमानों से ही सीखा है। आज तो स्थिति यह है आज का हिन्दू तो मुसलमानों की तुलना में और अधिक कट्टर हो गया है और अब यह कट्टरता ही मुसलमानों को परेशान कर रही है।

'भारत में इस्लाम कैसा होना चाहिए, यह बात केवल सूफी सतों ने समझी; लेकिन उन सूफी संतों का संदेश ही मुसलमान नहीं समझ पाए। मुसलमानों ने अपना आदर्श सूफी संतों को न बनाकर आक्रमणकारी योद्धाओं को बनाया।'

उपन्यास पढ़ते हुए ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो जिज्ञासा बढ़ाती हैं। उत्सुकता जगाती हैं, कभी मन विचलित होता है, कभी शांत तो कभी उद्वेलित।

रामेश्वर के साथ एक पात्र है शाहनवाज। रामेश्वर उन्हें अपना छोटा बेटा मानते हैं और उसी के इर्द–गिर्द सारा उपन्यास घूमता है। बहुत कुछ आपको बता दिया, अब आप उपन्यास पढ़कर पूरी कहानी जानें। इतना कहूँगी कि उपन्यास बेहद पठनीय है और यह उपन्यास घर–घर पढ़ा जाना चाहिए। लेखक ने शिल्प में कई नए प्रयोग किए हैं, जो उपन्यास को रोचक बनाते हैं।

मुझे अंत बहुत प्रभावशाली लगा, बेहद सकारात्मक। दंगे केबाद जिस भारत का जन्म होता है, उसे हिन्दू और मुसलमान दोनों थामते हैं। डॉक्टर जोसेफ मर्फी की पुस्तक 'द पावर ऑफ योर सब कांशियस माइंड' पूरे विश्व में बहुत पढ़ी गई; क्योंकि इस पुस्तक में लेखक ने उस शक्ति को मनुष्य के भीतर बताया है, जिसे सभी धर्मों में तलाशा जाता है। अपनी भिन्नता के कारण यह पुस्तक बहुत सराही गयी है।

'जिन्हें जुर्म–ए–इश्क पर नाज था' पंकज सुबीर का उपन्यास भी एक भिन्न संदेश देता है और एक ऐसा पैगाम लेकर आया है, जिसे पढ़कर ही समझा जा सकता है।

शिवना प्रकाशन, मध्यप्रदेश –
07562405545

मासूम और अबोध बच्चियों के साथ होनेवाली दरिंदगी

प्रतिभा रामकृष्ण श्रीवास्तव,
उषानगर एक्सटेंशन, परमेश्वरी विहार,
इन्दौर (म.प्र.) 452009
मो. 9826290436,

मासूम बच्चियों के साथ दरिंदगी करनेवाले जघन्य अपराधियों को कोर्ट नपुंसक और नामर्द की सजा सुनाए, तब शायद मासूम और अबोध बच्चियों के साथ होनेवाली दरिंदगी पर कुछ अंकुश संभव हो। उन्हें इसके साथ ही जेल की सजा भी दी जाए, ताकि जेल में अकेले बैठकर उस घड़ी को कोसें, जब उन्होंने इस जघन्य अपराध को अंजाम दिया। परन्तु हमारे यहाँ तो न्याय व्यवस्था इतनी सुस्त और पंगु है कि जिन बलात्कारियों को कोर्ट द्वारा फाँसी की सजा सुनाई गई, उनमें से किसी को भी आज तक फाँसी की सजा नहीं हुई, इसीलिए दरिंदों के हौंसले बुलन्द है। उन्हें सजा का जरा भी खौफ नहीं है। बलात्कार के जितने भी किस्से देखने और सुनने में आते हैं, उनके पीछे अधिकतर दो कारण होते हैं–नशा करना और पोर्न फिल्में देखना। नशा करने और पोर्न फिल्में देखने के बाद उनकी बुरी और घिनौनी नजर छोटी–छोटी और मासूम बच्चियों पर पड़ती है; क्योंकि वे नासमझ हैं और विरोध करने की क्षमता उनमें नहीं है, इसलिए वह दरिंदगी का शिकार होती है।

कुछ वर्ष पहले डिंपल कपाड़िया की एक फिल्म आई थी, जिसका नाम था 'जख्मी औरत'। इस फिल्म के निर्देशक ने बलात्कार जैसी गंभीर समस्या का हल इसमें बताने का प्रयास किया था। तब छोटी बच्चियों के साथ इतने भयंकर और जघन्य अपराधों की संख्या बहुत कम थी। उस समय इस फिल्म की काफी चर्चा हुई थी। कुछ लोगों ने फिल्म की आलोचन भी की थी। लेकिन अब तो दरिंदों ने सारी सीमाएँ लाँघ दी हैं, वे दरिंदगी के बाद बच्चियों को मारकर फेंक रहे हैं, यहाँ तक कि बच्ची के शव के साथ भी। अब यह फिल्म हमें कोई संदेश देती है, जिसपर विचार करने की आवश्यकता है। फिल्म में बलात्कारियों को नपुंसक बनाकर छोड़ दिया जाता है।

अब हमें इस विषय को गंभीरता से लेना होगा, सिर्फ कड़े शब्दों में निंदा करने की बात नहीं बनेगी।

दरिंदों से जब पूछा जाता है कि उन्होंने ऐसा जघन्य अपराध क्यों किया तो अधिकतर मामलों में उनका कहना होता है कि उन्होंने इसके पहले नशा किया था और पोर्न फिल्में देखी थीं। सरकार को चाहिए कि यू ट्यूब पर दिखाई जानेवाली पोर्न फिल्मों पर सख्ती से प्रतिबंध लगाए। क्योंकि मोबाईल आजकल उच्च और निम्न सब तबकों के युवाओं के पास हैं। इन पोर्न फिल्मों को देखने के बाद ही वे जघन्य अपराध कर गुजरते हैं।

हमारे देश में आजकल यह नारा बहुत लिखा और बोला जाता है कि 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ'; परन्तु बड़े दुःख की बात है कि यह सिर्फ नारा ही बनकर रह गया है। इस सरकार से यह उम्मीद है कि वह इस समस्या को उतनी ही गंभीरता से ले जितनी गंभीरता से वह कश्मीर मुद्दे पर विचार करती है। कहीं ऐसा न हो कि किसी बड़े नेता या व्यवसायी की बच्ची के साथ यह दुर्घना घटे, तब सरकार यदि कोई सख्त कदम उठाती है, तो उसे तब यह ताना जरूर सुनना पड़ेगा कि अब सरकार नींद से जागी है।

समीक्षा

शिक्षा का वैचारिक कुम्भ है मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा

डॉ. डी.एन. प्रसाद, प्राध्यापक,
महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय,
वर्धा, मो.–9420063304

चिन्तन की नूतनता और भाषा की प्रवाहमयी गूढ़ता के साथ जब प्रो. रमेश दवे सर्जना को आयाम देते हैं, तो वह एक नायाब नमूना निर्मित हो जाता हैं। कविता हो, कहानी हो, उपन्यास हो, आलोचना हो या संपादकीय विहान हो; सब कुछ विहान के विहग की भाँति नूतन होता है, पाठक को चौंकानेवाला होता है और सृजनाधर्म के लिए रमेश दवे की सृजनधर्मिता के प्रति चिंतन का आयाम दे देता है। इनके सृजन में शिक्षण और साहित्य का सम्मिलन इन्हें औरों के लेखन से अलग करता है। कविता में अनछुए बिम्ब का स्पर्श, कहानी में कथन की शैली का अलग व्याकरण, उपन्यास में सामाजिक आँखों से ओझल, किन्तु सार्थक समस्या का कथाबोध और समालोचना में समदृष्टि की समालोचना; किन्तु भाषा वाग्प्रवाह की तरह तरल और संपादकीय समकाल पर तिरोहित रमेश दवे की तात्कालिक संवेदना का साहित्य सृजन है। संवाद में कहीं कोई लाग–लपेट नहीं; न कोई भाषायी गोपन, न छद्म का आलोड़न।

व्यक्तित्व 'एकला चलो रे बंधु...' परन्तु पीड़ा व्यक्ति की हो या समाज–परिवार की, श्री दवे दबे पाँव आकर अपना काम कर जाते हैं। न कोई फतवा, न कोई शोर और न कोई इस्तहार! आलोचना की उत्तर परंपरा में रचना–समय का संघर्ष जारी है और अस्सी पार के वय में भी कलम की धार अपनी दिशा में तीक्ष्ण है। एक और बात है रमेश दवे में, रमेश की रुह जहाँ रहबर हो गयी, समझो कोई–न–कोई रूहानी इमारत खड़ी होगी ही! बात महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा की है, रमेश दवे को यहाँ तीन माह के लिए अतिथि लेखक का आमंत्रण मिला। विश्वविद्यालय के अतिथिगृह का एकांत चिंतन सृजन को प्रवाह देने लगा। कुछ स्फुट सर्जना के बाद आकारिक सर्जन आकार लेने लगा। रमेश दवे अपने परिवेश के समकाल और रुचि की सुरुचि से विषय उठाते हैं और संदर्भित शब्द से विषयानुकूल कथा की रचना कर डालते हैं। अपने पूर्व के दो उपन्यास 'खेलगुरु', 'हरा आकाश' की भाँति तीसरा उपन्यास 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' विषय परिप्रेक्ष्य में अकेला है। 'खेलगुरु' खेल की दुनिया की जबर्दस्त कथा, 'हरा आकाश' पर्यावरण की परिधि में गार्डेनिंग पर इकलौती कथा रचना और तीसरा 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' शिक्षा जगत् का संपूर्ण दस्तावेज औपन्यासिक वृत्ति में। इस विषय पर संपूर्ण उपन्यास की रचना अभी तक नहीं है। इस तीसरे उपन्यास का रचना समय भी स्मॉल इज ब्यूटीफूल की भाँति है अर्थात् मात्र 47 दिनों की रचनात्मकता में उपन्यास की पूर्णाहुति होती है। इससे रमेश दवे की सर्जनात्मक ऊर्जा का पता चलता है और सब सार्थक होता है–ओल्ड इज गोल्ड कहना। शिक्षा–समाज को मात्र 47 दिन में औपन्यासिक कथानक में पिरोकर पूर्णता प्राप्त करना एक अनोखी और अकेली घटना है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास लेखन की यह अवधि लेखक की कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का सम्मिलन ही है। यह उपन्यास लेखकों के लिए नज़ीर है। यों यह भी कहा जाए कि 80 के वय में लेखक रमेश दवे ने उपन्यास का एके 47 दाग दिया है। यह साहित्यिक हलचल का हवाला होना चाहिए।

उपन्यासकार रमेश दवे ने अपने पूर्व दो उपन्यासकारों की भाँति 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' को समाज के सामने हल खोजने को रख दिया है। शिक्षा समाज का एक ऐसा जरूरी विषय है, जिसके बिना समाज के विकास की कल्पना नहीं। हम सभी जानते हैं कि शिक्ष मंदिर में ज्ञान का नैतिक व्यवहार सिखाया जाता है, परन्तु उसी मंदिर में जब ज्ञान की अनैतिक व्यवहार होने लगता है, तब भी हम अपना होंठ सीले रहते हैं। मास्टर रामनाथ होंठ खोलना चाहता है, परन्तु फिर भी सांसारिकता से थक जाता है। तब उपन्यास का क्रिएटिव कैरेक्टर हेमन्तराव पांडुरंग सिरपुरे नागपुरवाले, जो मास्टर एकनाथ का सहपाठी है, उसे शिक्षा की वर्तमान स्थिति का आकलन कराता है, ''रामनाथ थोड़ा धीरज से काम लो। जल्दबाजी के फैसले कभी–कभी नुकसान में बदल जाते हैं। माना कि हमारा शिक्षातंत्र खराब है, भ्रष्ट है, कहीं–कहीं अराजक है, मगर दो शताब्दियों की औपनिवेशिक शिक्षा ने हमसे हमारा चरित्र तो छीन लिया और हमारे अंदर भी उपनिवेशवाद का चरित्र ही रच दिया। हमारे सोच पर हमारे अहंकार, अधिकार, सत्ता, शक्ति, धन सबका उपनिवेश हावी है। क्या करें व्यवस्था तो निर्मम लौह–कवच कसे बैठी है, उसे तोड़कर कवच मुक्त करनेवाली शक्ति अभी हमारी शिक्षा बन नहीं पाई है। फिर भी एक बात तो है, इस शिक्षा के उपनिवेश से उपनिवेश के विरुद्ध अभियान छिड़े, आंदोलन हुए, क्रांतियाँ हुईं और कई गुलाम देश आजाद हो गये। आजाद तो हो गये, मगर आज तक हम एक आजाद मुल्क की शिक्षा कैसी हो या ऐसी हो कि जो हमारा उपनिवेश हमारे मन से उखाड़ फेंके, ऐसा कुछ नहीं हुआ।''

अपने रेवेन्यु अफसर मित्र सहपाठी हेमन्त राव पांडुरंग राव सिरपुरे नागपुरवाले की शिक्षा आयाम पर इतनी अच्छी विश्लेषणात्मक बातें सुनकर शिक्षक रामनाथ अपने भूत, वर्तमान और भविष्य की शिक्षा परिणाम पर विचरने लगा। फिर जिस मित्र हेमंतराव की अजन्मा बेटी के लिए प्ले स्कूल में एडमिशन के हेतु मास्टर रामनाथ प्ले स्कूलों की खाक छान रहा है और व्यवस्था के व्यवहार से माथा पीट रहा है, उस हेमंतराव की चिंतनपूर्ण व्यावहारिक दर्शन की बातें सुनकर अपनी उच्च शिक्षा की पीएच.डी. डिग्री तक में दाग देख रहा रामनाथ क्षुब्ध है कि ऐसी शिक्षा व्यवस्था का समाजशास्त्र कैसा होगा, जहाँ पीजी (प्ले ग्रुप) से पीएच.डी. तक तंत्र की तांत्रिक व्यवस्था की जकड़न है। यह जकड़न जंकफूड की तरह हमारी धमनियों को निष्क्रिय और विचारशून्य बनाकर संवेदनहीन शिक्षा का परिवेश निर्मित कर रही है, जहाँ रामनाथ ऐसा शिक्षक शून्य में विचरण करने लगता है। ऐसी ही शिक्षा व्यवस्था से निकले अक्षर ज्ञानी समाज के लिए अराजक बने हुए हैं। इस बात की चिंता रामनाथ को विकल्प तलाशने को बाध्य करती है।

इसी व्यवस्था में पली बढ़ी बॉटनी की प्राध्यापिका शालिनी शील की प्रतिमूर्ति की तरह आती है और मास्टर रामनाथ को 'राम' बनने को प्रेरित करती है। शालिनी में शील है, संयम है, शालीनता है और अपने पेशे से प्यार भी है, क्योंकि छात्राओं के बीच एक शीलवान और लोकप्रिय शिक्षक की भूमिका में खरी है। बॉटनी क्या पढ़ाती है, जैसे जीवन से ही जोड़ देती है। जेसी बसु की खोज से आगे की बात! शालिनी 'राम' को संभालने की कोशिश करती है, ''सुनो रामनाथ! विकल्पों में मत चक्कर लगाओ। विकल्प निर्णय की या चयन की ताकत को कमजोर कर देते हैं। मेरा ख्याल है, तुम मास्टर तो पूरे हो, प्राध्यापक बनने की योग्यता भी पूरी है, एनजीओ भी चला सकते हो, मगर इन सबको चलाने का काम एक ब्यूरोक्रेट और अच्छी तरह से कर सकता है। बस जरूरत है कि ब्यूरोक्रेसी को भी बदलना होगा। उसके औपनिवेशिक या सामंती चरित्र को लोकोन्मुखी और शालिन बनाना होगा। ब्यूरोक्रेट्स को विनम्र और संवेदनशील बनाने की जरूरत है। ब्यूरोक्रेसी को ब्यूरोग्रेसी अर्थात् ग्रेसफूल बना सकते हो तुम! अधिकार से अहंकार पैदा होता है, ब्यूरोक्रेसी के अहंकार का यह पुरातन प्रशिक्षण बदलकर लोककल्याणकारी बनाना होगा। राजा महाराजाओं के साढ़े छह सौ राज्यों को जिस शक्ति ने एक ही झटके में राजा से नागरिक बना दिया,

उसी झटके से तुम्हें ब्यूरोक्रेसी को बदलना पड़ेगा। सेवा का अर्थ न जाने क्यों नौकरी हो गया है। नौकरी का अर्थ भी बड़ा अधिकार होकर अहंकर की आजमाइश हो गया है। तुम आज से पूरे छह माह का अवकाश ले लो। तैयारी में जुट जाओ। विदाउट–पे होने का घाटा मैं पूरा कर दूँगी।''

शालिनी की व्यवहार कुशल बातों ने रामनाथ के अंदर के ज्ञान को चुनौती दे दी। उसके अंदर का मास्टर जाग उठा। शील, संयम और कर्म की त्रिवेणी बहने लगी। निःस्वार्थ उदारता शालिनी की शिक्षा के झरोखे से रामनाथ को शीतल हवा दे गई। वह अव्यवस्था के बीच भी अपना निर्णय निर्मित करेगा। बने बनाये रास्ते पर चलने की बजाय वह अपना रास्ता स्वयं निर्मित करेगा। दूसरों के लिए आदर्श बनेगा। शिक्षा के सरोवर में एक अपना पत्थर उछालेगा, जिसकी तरंगें 'अंतिम जन' तक जायेंगी। समय के विद्रूपों से लड़ेगा, नैतिक साहस से बोलेगा।

कटिबद्ध मास्टर रामनाथ अपनी ईमानदारी पढ़ाई से आईएएस हो जाता है। आदिवासी बहुलक्षेत्र में पोस्टिंग आदिवासियों के नैसर्गिक जीवन और स्वभाव का परिचय कराती है। कक्षा और पाठ्यपुस्तक से परे ये प्राकृतिक नियमों से संचालित हैं, आज की शिक्षा व्यवस्था से कहीं ज्यादा शील और संयम के साथ। प्रशासक बना रामनाथ अपने अंदर के शिक्षक और शिक्षा को ढूँढ़ता है। शिक्षक के रूप में अपने को संवेदनशील पाता और सोचता है, 'क्यों कहीं सभी शिक्षक संवेदना से भरे हैं। यहाँ रामनाथ को कवि गोरख पांडेय की कविता याद आती है–तुम्हारे हाथों को/ अपने हाथों में लेकर सोचता हूँ/ क्यों नहीं दुनिया/ तुम्हारी हाथ की तरह नरम और मुलायम है। फिर रामनाथ शिक्षा में अराजकता और हिंसक वृत्ति का समावेश पाता है। उसे मैन मेकिंग एडुकेशन दिखता ही नहीं है। द्वंद्वसे उद्बुद्ध होकर अपने प्रमुख सचिव से प्रश्न कर बैठता है–''सर! मैंने मन में सदैव एक विचार खलबलाता रहता है। स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक झूठ, ईर्ष्या, अपराध, बलात्कार, भ्रष्टाचार, झूठी शिकायत, तथाकथित आरोप, चरित्र हनन आदि किसी ऐसे विषय का कोई पाठ्यक्रम नहीं होता, न ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, फिर ये दुर्गुण कहाँ से आ जाते हैं?यदि ये मनुष्य के स्वाभाविक मनोविकार हैं तो क्या शिक्षा से इन्हें सुधारा नहीं जा सकता?शिक्षा अगर संयम, शील, संतुलन, सहयोग, सद्भाव, आपसी प्रेम आदि नहीं बनाती तो क्या शिक्षा से अक्षरों, शब्दों का जखीरा जीवन भर ढोना है?हमने स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय बनाए, मगर उनसे अच्छे मनुष्य क्यों नहीं बनाए सर?''अपनी अंतश्चेतना की अंतर्मुखी चिंता को व्यस्त कर रामनाथ कुछ रिलैक्स तो होता है, परन्तु 'येई छलेटिके मानुष कोड़ते होइबे', 'मैंने मेकिंग एजुकेशन', 'विद्याददाति विनयम्' आदि–आदि आप्त सूत्रों के अर्थ संदर्भ को लेकर चिंतित रहता है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की हिंसक वृत्ति से क्या शांति की शिक्षा पूर्ण होगी?विकास के बदलते मॉडल में शिक्षातंत्र जिस विकास की सीढ़ियाँ तय रहा है, उससे मूल्याधारित शिक्षा का कोई मेल है क्या?जबकि शिक्षा स्वयं एक मूल्य है। गाँधी, विनोबा, रबि बाबू, विवेकानंद, अरविन्द, महामना आदि सभी ने शिक्षा मूल्य से जीवन मूल्य की सीख दी है, फिर क्यों हम प्लेटो, अरस्तू, पेस्टॉलोजी, फ्रोबेल, जॉनडिवी के पीछे भाग रहे हैं, जबकि बर्ट्रेण्डरसेल जैसा दार्शनिक बाइबिल के बाद 'हिन्द स्वराज' को अपनी सर्वाधिक प्रिय पुस्तक मानता है। इवान इलिच जैसा शिक्षाविद् सेवाग्राम में रहकर शिक्षा के गांधीचिंतन को ग्रहण करता है, आदि–आदि विचारकों के विचारधारा से रामनाथ टकराता है, धारा में बहता है और अपने प्रशासक पर स्वयं से प्रश्न करता है, 'आखिर शिक्षा की बुनियाद ऐसी क्यों है?जबकि शिक्षा आदमी से मनुष्य की रचना करती है, उसका परिष्कार और परिमार्जन करती है। इससे इतर विकास का मानवीय मॉडल और क्या हो सकता है?' रामनाथ चिंतित है, उपन्यास का लेखक भी चिंतित है।

शिक्षा की केन्द्रीय भूमिका पर उपन्यास की सर्जना एक वैचारिक आंदोलन से कम नहीं है और जरूरी भी है। मूल्यहीन शिक्षा की वर्तमान दिशा ने सूचना तो दी है, विद्यार्थी का ब्रेन सूचनातंत्र से भर तो दिया है, परंतु संवेदना को खाली कर दिया है। ऐसे प्रश्नों में प्रशासक बना रामनाथ ब्रिटिश शासन और वर्तमान शासन के बीच अंतर कर चौक जाता है–'गांधी था तब भी गोली चली, गांधी पर भी गोली चली और गाँधी के बाद भी गोली चल रही है। क्या शांति, प्रेम, अहिंसा, सद्भाव की चतुर्वेणी सूख गयी है?पश्चिम की हिंसक सभ्यता ने यदि हमें हिंसक शासन–प्रशासन दिया, उनका ही पुलिस कोड, उनका ही इंडियन पेनल कोड, क्रिमिनल और सिविल प्रोसीजर कोड, अगर सारे कोड उनके ही हैं, तो हमारा कोड क्या है?हमारा जो मॉरल कोड गाँधी ने रचा था और जिसके समक्ष गोलियों की सत्ता गलियों में आजादी के अहिंसक नारों की सत्ता में बदल गई थी, वह अब कहाँ है?गाँधी से जो गोली हार गई थी, उसी गोली से हमने गाँधी को मार डाला। गाँधी की मौत पर ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने क्या कहा था, मालूम है! उनका कहना था कि गाँधी को छह साल तक जेल में भी हमने उन्हें जिंदा रखा, आपने उन्हें छह माह के अंदर ही जेल के बाहर मार दिया। कितना बड़ा सच बोल गया था। सच पूछा जाए तो गाँधी की मृत्यु के बाद आजाद भारत में भी गोली की ही सत्ता आ गयी है।

उक्त चिंतन लेखक का हो या उपन्यास के नायक रामनाथ का या देश के अन्य अनेक रामनाथ का, जो नैतिक साहस के साथ बदलाव करना चाहते हैं, विचारान्दोलन करना चाहते हैं; परन्तु गोली की सत्ता के कारण सहम जाते हैं, विमुख हो जाते हैं, होंठ–सी लेते हैं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के बावजूद! वस्तुतः उपन्यास शिक्षा–समाज का खुला दस्तावेज है, जो हर वर्ग के लिए अनिवार्यतः पठनीय नहीं, विचारणीय है। रामनाथ आदर्श नायक है तो उसका सहपाठी हेमंत राय पांडुरंगराव सिरपुरे नागपुरवाले वर्तमान परिवेश का व्यवहार कुशल सरकारी अधिकारी और सहनायक, फिर भी अपनी बेटी के लिए प्ले स्कूल में प्रवेश के हेतु मारा–मारा फिरता उपन्यास का नवाचारी पात्र, जिसे पता है कि जिस दिन सरकारी स्कूल नहीं होंगे, आधा हिन्दुस्तान अनपढ़ या निरक्षर रह जाएगा, परन्तु मेरा आकलन है कि एक तिहाई भारत (7 5 प्रतिशत) अक्षर पहचान से कोसों दूर रह जाएगा। बावजूद इसके हेमंतराय पांडुरंगराव सिरपुरे नागपुरवाले शिक्षा के वर्तमान विकास को दौड़ में अपनी बिटिया के लिए प्ले स्कूल दौड़ रहा है और प्रशासक बना रामनाथ पीएच.डी. जैसी शिक्षा की सच्ची डिग्री के चंगुल से विमुख व्यवहारवादी शिक्षा दार्शनिक की दृष्टि से विकसित व्यवहार को देखना चाहता है, जो शिक्षा का जीवन मूल्य है, विचार मूल्य है, जिससे मानवीय व्यवहार की निर्मिति होती है। विचारहीनता की व्यावहारिक प्रबुद्धि के कारण वैचारिकहीन व्यक्तिसमूह ने गाँधी को गोली मारी, अगर शिक्षा की वैचारिक व्यावहारिकी का परिज्ञान होता तो शायद ऐसा नहीं होता। आज भी हम मानसिकता से ऊबर नहीं पाये हैं, आज तो शिक्षा की सूचनांक प्रणाली ने वस्तुनिष्ठता तो दी है, समष्ठिनिष्ठता नहीं दी है। नेट पर पढ़ने की आदत तो विकसित हुई है, पर क्या नेट किसी भी जीवित पुस्तक का विकल्प है?पुस्तक विचार को जन्म देती है, नेट सूचना बनकर रह जाता है। तात्पर्य कल चित्त अस्थिरता के कारण विचारहीनता थी, आज तकनीकी दौड़ के कारण!

आज अलबत्ता यह उपन्यास केवल शिक्षा की गल्पकथा ही नहीं, बल्कि मनुष्य के विवेक, विचार और अनुभव विन्यास की भी कथा है। इसे शिक्षा का वैचारिक कुंभ कहना या शिक्षा का वैचारिक ज्ञानकोष कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा। अर्थात् शिक्षा विचार का ज्ञानकोष है यह 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' जिसे शिक्षा के खुरदुरेपन से सॉफ्ट बनाया है उपन्यास की धीरोदात्त नायिका शालिनी ने! प्राध्यापिका शालिनी कितना शील, कितना संयम, कितनी मर्यादाएँ, धीरोदात्त नायिका गुणसम्पन्न, कितनी शालीनता! विसंगतियों और विडम्बनाओं से स्वयं संघर्ष करती मास्टर रामनाथ की होकर शिक्षा को सुपथ से सहेजती, सँवारती सहधर्मिणी! बड़ी सहजता से गूढ़ बात तो सरलता में कह जाती है, जहाँ कोई विसंगति नहीं–'हाँ, रामनाथ! सोच तो तुम्हारी सही है। मैं भी चाहती हूँ कि यह देश केवल हेमंतराव पांडुरंग राव सिरपुरे नागपुरवाले की बेटी उज्ज्वला के प्ले स्कूल की ही खोज न बने, बल्कि सारे देश

के सारे बच्चों का प्ले स्कूल बन जाए, सारे किशोरों, युवकों का प्ले–कॉलेज और प्ले–विश्वविद्यालय बन जाए, जहाँ शिक्षा आनंद का उत्सव बने, ऊर्जों का चमत्कार बने और शिक्षा ऐसी बने कि हर स्वप्न देखनेवाले को शिक्षा अपना स्वप्न लगे।'

परिप्रेक्ष्य उपन्यास के 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' लेखक रमेश दवे के सुदीर्घ शैक्षिक अनुभव की सृजन गाथा है, जिसे अत्यन्त निर्भावुक होकर, शैक्षिक संवेदनशीलता से रचा गया है। शिक्षा को केन्द्र में रखकर अभी तक समग्र और सर्वांग रूप से कोई उपन्यास शायद हिन्दी में संभव नहीं हुआ था। आंशिक रूप से किसी पक्ष विशेष को लेकर रची गयी अनेक कृतियाँ हैं तो अवश्य; लेकिन वे शिक्षा के रूप–स्वरूप, स्थिति और विकास को उसकी पूर्णता में संभवतया प्रस्तुत कम ही कर पाती हैं। ऐसे में शिक्षा जैसे एक विशाल–व्यापक तंत्र को कथाभूमि बनाकर रचना कम चुनौतिपूर्ण कार्य नहीं रहा होगा। लेकिन प्रो. रमेश दवे ने जहाँ वस्तुनिष्ठ यथार्थ को रोचकता से रचा है, वहीं व्यंग्य और भाषाई गठन से उपन्यास में निरंतर पठनीय उत्सकुता कायम रखी है। शिक्षा जो आजकल तंत्र या व्यवस्था के अधीन है, उसे उसकी मर्यादा, निष्ठा और संकल्प के साथ कैसे सामाजिक परिवर्तन की तेजस्वी भूमिका में सक्रिय किया जा सकता है, यह उपन्यास पढ़कर शिक्षा से जुड़े शासक, राजनीतिक नेतृत्व, प्राध्यापक, सामान्य नागरिक, अभिभावक, समाजकर्मी, छात्र–छात्राएँ सभी कुछ नया सोचने के लिए उन्मुख होंगे। वस्तुतः यह उपन्यास संभवतया भारतीय शिक्षा के भविष्य चिंतन की एक भूमिका ही है, जिसे पढ़कर आगे का शिक्षा मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

अंततः 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' ब्रिटिश भारत के बाद के भारत की शिक्षा तस्वीर उकेरता, समसामयिक समय का यथार्थवादी कला के उपांगों को प्रस्तुत करता एवं अपने औपन्यासिक चरित्र को चरितार्थ करता कथा–माध्यम में कथानक का दर्पण है, जिसमें एक पूरा शिक्षा–समाज अपना मुखड़ा साफ देख सकता है और देख सकता है समाज–दर्शन, शिक्षा–दर्शन के साथ मनोविज्ञान दर्शन भी! लेखक प्रो. रमेश दवे की भाषा संवेदना को दबे पाँव चिकोटी काटकर चली जाती है, पाठकरूपी समाज को इसका मानवीय दर्द सहने को और मजे की बात यह हे कि दर्द सहने की सही मानवीय संवेदना समस्या का सुपथ दिखाती है, उपन्यास का इष्ट भी यही है। शिक्षा में साहित्य का उन्मीलन और साहित्य में शिक्षा का आलेपन एक दृष्टिपाक देता है। अस्तु, अपने विषय के परिप्रेक्ष्य में 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' औपन्यासिक कथानक में अकेली घटना है। इसमें समाज अपनी सम्प्राप्ति देखेगा।

डॉ. अनीता पंडा,
खार मिलकी, शिलांग
मो. 6909365645

हिन्दी धारा

हिन्दी है विचारो की वाहिनी
सज्जित है जिससे जीवन रागिनी
यह भारतीयता की प्रबोधिनी
सम्पूर्ण विश्व की उद्‌बोधिनी
मुक्त क्लिष्ट शब्दजाल
इसका फैला है सागर विशाल
सुरभित जिससे सर्वकाल
रचनाएँ इसकी अनंत काल
नहीं किसी की प्रतिद्वंद्वी
ज्ञान सरोवर की है नलिनी
सबके लिए बुद्धिदायिनी
शिक्षा इसकी फलदायिनी
प्रवाहित होती इसमें संस्कृति
भाषाओं की है उत्तम कृति
जग उठी सुषुप्त प्रकृति
सहजता से मिलती स्वीकृति
नभ में झिलमिल असंख्य तारे
पर एक चंदा सबके प्यारे
चांदनी सबके मन को सुहाती
हिन्दी हम सबको है भाती
निश्छल पावन इसकी धारा
जन–जन ने इसे स्वीकारा
सम्प्रेषण के तट हैं मजबूत
बन जाती सबके अनुकूल।

हिन्दी महिमा

ऋतुओं में है ऋतु बासंती
भाषाओं में हिन्दी रसवंती
नदियों में पावन गंगा
मीठी बोलियाँ इसकी तरंगा
भारत की है यह प्राचीन संस्कृति
देवनागरी इसकी अनुपम कृति
फूलों का राजा है गुलाब
हिन्दी है हिन्दुस्तान का आब
सुनकर इसका लय और ताल
संपूर्ण विश्व हुआ निहाल
रक्त कमल बना श्री प्रतीक
व्याकरण निर्मित यह सटीक
अपनी सहजता से मुग्ध करती
नवीन शब्दावली इसमें घुलती
एक है भाषा रूप है अनेक
यथा चाँद तारे अनेक
हिन्द देश की हिन्दी अनुपम
सीमाओं की खोलती बंधन
भारतीय संस्कृति पहचान बनी
लोकजन की अभिव्यक्ति बनी
अध्यात्म–दर्शन इससे प्रसारित
विज्ञान जगत् इससे अन्वेषित
सर्वगुणों से समन्वित भाषा
जागृत करती हमारी हृदयाशा।

डॉ. आशा सिंह सिकरवार,
अहमदाबाद, गुजरात

पेड़ पुकारते हैं

जब रात में सो रहे होते हैं पेड़
धूप और चिड़िया
के स्वप्न में डूबे होते हैं
वे आरियाँ चलाते हैं
अंधेरे में
चुपचाप

धड़ाम–धड़ाम..
वे गिरते जाते हैं पृथ्वी पर
सोये हुए पर प्रहार
कायरता है
धूप और चिड़िया
स्वप्न में ही
क्षत–विक्षत
वे ताकते हैं बस्तियों की ओर

सुलग उठती हैं बस्तियाँ
राख हो जाते हैं जंगल
सब अंधेरे में
उनका रुदन हवा के पेट को
चीरता
खोजता है जवाब..
नहीं बजता
पेड़ के पेट का पानी

मूकदशी चुप्पी में
लुका–छिपी
किसकी शामत है
डाल दे
शेर के जबड़े में हाथ
हवा, पानी, रोटी
निगल रहा है वह
फक़्त
इमारतों की ख़ातिर
झुग्गी झोपड़ियों में
बसे लोग मारे जा रहे हैं
बुझ जाती हैं सुलगकर चिंगारियाँ
नीली बावड़ी में जा गिरती है चीख़

वे पेड़ काट रहे हैं
कट भी रहे हैं स्वयं
बुद्ध भी नहीं, नहीं दिखा पायेंगे राह
फूट चुकी है इनकी आँखें

रातभर चलती है आरियाँ
भरी आँखों में
मैदान निकल आते हैं
भीतर रोते हैं पेड़
पुकारते हैं–'बचाओ...'

आरियाँ चल रही हैं रोटी पे
आरियाँ चल रही हैं बच्चों की नींदों में
आरियाँ चल रही हैं धरती के बछड़ों पर
शिकारी ले जाता है रोहूँ का मध्यभाग
छोड़ जाता है
घास–फूस, पत्ता
बकरियाँ–भेड़ चरेंगी
बनेगा
उनके स्तनों में गुनगुना दूध
एकाध दिन
जब हम सो रहे होते हैं रात में
तब पेड़ पुकारते हैं हमें
नहीं होंगे पेड़
तब चीखेंगे हम
हम किसे पुकारेंगे।

आलेख

राष्ट्रकवि दिनकर के काव्यगुरु : 'मधुर'

भगवती प्रसाद द्विवेदी, शकुंतला भवन,
सीताशरण लेन, मीठापुर,
पटना, मो.–9430600958

'मैं तो आपकी हाल की कविताओं पर दंग हूँ। सच पूछिये तो ये कविताएँ मेरी अपनी मनोदशाओं को ही व्यंजित करती है और जी चाहता है कि काश, इनमें से कई के नीचे रचयिता की जगह पर मेरा नाम होता! इन्हें कई मित्रों को सुना चुका हूँ। कल शाम को पूरी कॉपी जयप्रकाशजी के यहाँ ले गया था और उन्हें तथा अन्य मित्रों को कोई पन्द्रह कविताएँ सुनायीं। सभी लोग बड़े ही चमत्कृत हुए। इधर बिहार में इनका अच्छा स्वागत होगा, ऐसी मेरी आशा है। इनके प्रकाशन की व्यवस्था कर रहा हूँ। अगर आपकी ओर से कोई शर्त हो तो निःसंकोच भाव से लिखें कि मैं कहीं पक्का इंतजाम कर सकूँ।'

उपर्युक्त पंक्तियाँ हैं राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के एक पत्र की, जो उन्होंने अपने काव्यगुरु रामसिंहासन सहाय 'मधुर' को उनकी कविताएँ पढ़कर लिखी थीं। सिर्फ इतना ही नहीं, उन्होंने उनके काव्य–संकलन को अपने प्रकाशन से ससम्मान प्रकाशित भी किया था। दिनकरजी ने स्वयं सगर्व स्वीकारा है कि 'मधुर' जी की पंक्तियाँ उनके भीतर एक अपरिचित प्रकाश की सनसनाहट–सी पैदा कर देती थीं और जब–जब वे उन्हें गुनगुनाते, तब–तब एक अनिर्वचनीय आनंद से भर जाते थे।

जिन दिनों दिनकरजी ने लिखना शुरू किया था और लेखन के लिए किसी नये मार्ग की तलाश में व्यग्र रहा करते थे, उन्हीं दिनों 'मधुर' जी की एक काव्य–पुस्तक 'मधुर–लहरी' उन्हें हाथ लगी थी और उन कविताओं ने उनका मार्ग प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 'योगी' (पटना) के अक्टूबर, 1948 अंक में दिनकर ने स्वयं लिखा था–'' ...याद आता है कि 1928 ई. में मैंने 'मधुर–लहरी' नामक उनकी एक छोटी–सी पुस्तक देखी थी, जिसमें छोटी–छोटी कोई पन्द्रह–बीस कविताएँ संगृहीत थीं और जिसकी भूमिकाएँ स्वयं पंडित माखनलालजी चतुर्वेदी ने लिखी थी। उन दिनों मैं अपने लिए अभिव्यक्ति का कोई नया मार्ग ढूँढ़ रहा था और मुझे जो भी चीज कुछ नयापन लिए मिलती थी, उसे मैं बड़े ही चाव से पढ़ा करता था। इसी छोटी–सी विचित्र पुस्तक ने मेरी मनोदशा के निर्माण में बड़ा ही प्रभाव डाला और जिसे मैं नयी राह कहता था, उसका पता लगाने या रचना करने में उससे मुझे अच्छी प्रेरणा मिली।

'मधुर–लहरी' की वह प्रति मैंने एक मित्र से लेकर देखी थी, अतएव 1928 के बाद उसके फिर कभी दर्शन नहीं हुए; किन्तु दो–तीन दिनों के संसर्ग में ही उस पुस्तक ने मेरे हृदय में जो आर्द्रता उत्पन्न कर दी थी, वह कभी सूखी नहीं और उसकी गीली तस्वीर मेरे मनोदेश में कहीं बराबर तैरती रही। 'मधुर–लहरी' मुझे एक नवीन क्षितिज से उतरती–सी दिखाई पड़ी, अतः मैं उस दिशा की ओर गहरे मोह से देखने लगा, जिसका इंगित उसकी कविताओं ने किया था। उसकी कुछ पंक्तियाँ थीं, जिन्हें कभी तो शुद्ध रूप में और कभी स्मृति की लुप्त रेखाओं को जैसे– तैसे जोड़कर मैं जब–तब गुनगुनाता रहा। कई पंक्तियाँ थीं, जिनके साथ मादकता की अनिर्वचनीय घटाएँ स्मृति के कूल से उठकर मन के आकाश पर छा जाती थीं और मैं भीतर–ही–भीतर किस अलभ्य लोक की समीपता का बोध करने लगता था... 'मधुर–लहरी' की स्मृति मेरे मनोव्योम पर छा गयी और मैं फिर अचरज करने लगा कि वह कौन है, जो इतनी लापरवाही से और इतनी अच्छी चीज लिखता है?तबसे लेकर आजतक मैं बराबर इसकी कोशिश में रहा कि 'मधुर' जी से किसी भी प्रकार मेरा संपर्क स्थापित हो जाए...।' 'दिनकर की डायरी' में भी 'मधुर' जी से जुड़े अनेकों प्रसंग भरे पड़े हैं।

24 नवम्बर, 1903 को बलिया (उत्तरप्रदेश) सागरपाली गाँव में जन्मे बालक राम सिंहासन सहाय को लेखन अपने पितामह से विरासत में मिला, जो अपने समय के एक लोकप्रिय कवि थे। 'मधुर' उपाधि उन्हें 'भारतीय आत्मा' पंडित माखनलाल चतुर्वेदी से सस्नेह प्राप्त हुई। मिडिल स्कूल में जिले स्तर पर आयोजित लेख–प्रतियोगिता में, जिसमें हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपने विद्यालय से भाग लिया था, 'मधुर' जी को मंगलकोश ग्रंथ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उन्हीं दिनों 'गद्य–पद्य मंजरी' नामक पुस्तक का आपने संपादन किया।

विद्यार्थी जीवन से ही मधुरजी की रचनाएँ 'माधुरी', 'कर्मभूमि', 'गृहलक्ष्मी', 'चांद', 'विद्यार्थी', 'देश', 'प्रभा', 'त्यागभूमि' आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। इंटरमीडियट में उनका प्रवेश इलाहाबाद में हुआ, जहाँ अध्ययन के साथ ही उन्होंने 'गृहलक्ष्मी' और 'चांद' जैसी पत्रिकाओं में संपादन का काम किया तथा उन्हीं दिनों मैथिलीशरण गुप्त, लाला भगवान दीन, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीधर पाठक, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, रामकुमार वर्मा, विस्मिल इलाहाबादी आदि के साथ प्रगाढ़ संबंध स्थापित हुआ। आगे चलकर आपने कानून की विधिवत् शिक्षा ग्रहण की और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के साथ ही 10 अगस्त, 1925 को बलिया शहर में आकर वकालत का शुभारंभ कर दिया।

यों तो 'मधुर' जी ने गद्य और पद्य दोनों में लिखा, पर उन्हें मूल रूप से प्रसिद्धि मिली–राष्ट्रीय चेतना के कवि और बालगीतकार के रूप में। सन् 1920 से 1947 तक जहाँ आपने राष्ट्रीय कविताओं का सृजन किया, वहीं स्वाधीनता के बाद अपने लेखन बाल साहित्य के लिए समर्पित कर दिया।

प्रकाशित प्रौढ़ काव्यकृतियों में 'मधुर–लहरी', 'मधु– बिन्दु', 'गरल–सुधा', और 'श्रीराम की पुष्पक यात्रा' प्रमुख हैं। 'मधुर–लहरी' से जहाँ दिनकरजी ने प्रेरणा ली, वहीं 'मधु–बिन्दु' को उन्होंने स्वयं अजन्ता प्रकाशन, पटना से प्रकाशित कराया था। सन् 1946 में मधुरजी की पुस्तक 'ऐतिहासिक कथाएँ' छपी, जिसमें नौ भूली–बिसरी ऐतिहासिक कथाएँ संकलित हैं। पूरी पुस्तक में ऐसे ही शब्दों का प्रयोग हुआ था, जो एक दूसरे से सटने न पाएँ। इस पुस्तक को पढ़कर मुंशी प्रेमचंद ने भी अपनी सम्मति दी थी। आपके काव्य की प्रयोगधर्मिता देखते ही बनती है। आपके बालगीतों के संग्रह 'बच्चों के गीत' तथा 'बच्चों के मधुर गीत' बेहद चर्चित–प्रशंसित हुए थे। 'सुबाहुवध' (खंडकाव्य) में रामचन्द्र के बक्सर के युद्ध का वर्णन है। सभ्यताओं का यह युद्ध बक्सर में आरंभ होकर लंका में समाप्त हुआ। 'श्रीराम की पुष्पक यात्रा' (प्रबंध काव्य) उनकी अंतिम काव्यकृति थी।

'मधु–बिन्दु' में प्रकाशित 'दिल्ली कितनी दूर' शीर्षक कविता को राष्ट्रकवि दिनकर ने हिन्दी की अधोगति पर बोलते हुए संसद में पढ़ा था और वह कविता देश के कई प्रतिष्ठित पत्रों में भी छपी भी थी। उस हृदयविदारक कविता की दो पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

आज देश स्वाधीन हो गया, हम किसान मजदूर
दिल्ली में ही पूछ रहे हैं, दिल्ली कितनी दूर?

'डोम' और 'डोमिन' शीर्षक कविताओं को राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने न सिर्फ 'हरिजन' में प्रकाशित किया था, बल्कि उनके भाषणों के पूर्व उनका सस्वर पाठ भी किया जाता था। 'डोम' को संबोधित कर कवि कहता है–

मरघट तेरा अचल राज है पर्णकुटी रजधानी
कौन नहीं करने आता है तेरे घर मेहमानी?
तेरा निन्दक भी आएगा मुँह पर ओढ़ कफनियाँ
उस दिन मौन रहेगी उसकी पोथी, माला, मनियाँ।

इधर अँधेर नगरी में 'डोमिन' को दिया जानेवाला 'अछूत' का संबोधन

कवि बर्दाश्त नहीं कर पाता–
आग लगाती हो दीपक में, दीपक बल जाता है
शलभ सनेही उसी प्रेम से आकर जल जाता है
तेरी चमकीली चूड़ी में वैसी ही लाली है
तेरी चूनरि में वैसी ही सुन्दरि; हरियाली है
यौवन के वसन्त में जब तुम होती मदमाती हो
उस मस्ती में पग–पग पर जब चलती बलखाती हो
अलसाई आँखों में जब सौंदर्य झिलमिलाता है
कैसी सुन्दर लगती हो, कुछ कहा नहीं जाता है
क्यों भावों में भर जाता हूँ, पता नहीं पाया है
तेरी सुन्दरता में उस प्रभु की ही कुछ माया है
क्यों कहते तुझको 'अछूत', यह सहा नहीं जाता है
इस अँधेर नगरी में मुझसे रहा नहीं जाता है।

वादों से निर्विवाद रहकर भी कवि मानवतावाद का सही मायने में पोषक था। तभी 'हलवाहा' की दयनीय दशा भी उससे देखी नहीं जाती और वह भाव विह्वल होकर कह उठता है–
हे राजाओं के राजा! तकदीर तुम्हारी क्यों छोटी?
जीवन में भरपेट अभी तक कभी न पायी जो रोटी
दोपहरी में घरवाली वह लाती है रूखी–सूखी
तुम मर–भूखे देख रहे हो, क्या लाती है मर–भूखी

इन खेतों में हल चलता है, घर में चक्की चलती है
हलवाहिन अरमान पोसती और कलेजा मलती है
गाती है जँतसार, पीठ पर व्याकुल बच्चे रोते हैं
पता नहीं, करुणानिधान भगवान कहाँ पर सोते हैं।

देश के लिए सूली पर चढ़ने की सहर्ष इच्छा जाहिर करती हुई कवि की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–
कीमत में मत कोहनूर दिखलाना रे अभिमानी
किस कीमत पर बेचूँ अपनी चढ़ती हुई जवानी
सुन्दर, अति सुंदर है हँसना, फँसना, रोना–गाना
यही साध बाकी है, बढ़कर सूली पर चढ़ जाना।

'मधुर' जी की कविताओं में राष्ट्रीय स्वर परिलक्षित देख, डॉ. विवेकी राय ने लिखा है–'कवि दृढ़ और स्पष्ट शब्दों में अपने गौरवमय इतिहास को स्मरण करते हुए आसन्न पराभव के संदर्भों को आख्यायित करता है। वह जब भी मुँह खोलता है, मानवता अथवा राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में ही कुछ कहता है और अनंत भाव छवियों का गुंजलक बुनता चला जाता है। कवि निकट से भारत की आत्मा को पहचानता है। मधुरजी की भाषा में एक नया, खरा और मीठा स्वाद है। सरल सीधे शब्दों में आग भर–भरकर गाना सरल नहीं है। ज्वलन्त प्रश्नों को सम्प्रेषित कर वांछित आग भड़का देना सामान्य कवि के बूते की बात नहीं है।

'बालगीत साहित्य' शोधग्रंथ में निरंकार देव सेवक ने मधुरजी को मध्यकाल का प्रथम बालगीतकार माना है। उनके बालगीतों में सहजता, सरलता और बालमनोविज्ञान के स्पष्ट दर्शन होते हैं। 'बच्चों के मधुर गीत' में संगृहीत 'अम्मा! अब मैं बड़ा हो गया' शीर्षक कविता उद्धृत है–
अम्मा! अब मैं बड़ा हो गया
सब अक्षर पढ़ लेता हूँ
चाचा के कंधे पर जब मैं
अपने बल से चढ़ता हूँ
मुझे मँगा दो नीलम घोड़ा
सन–सन–सन दिल्ली पहुँचूँगा
बापू का ललाट छू लूँगा
वहाँ जवाहर लाल बनूँगा।

मधुरजी की कविताएँ कलेजे और कंठ से पैदा होती है, यही वजह है कि इनकी सहजता और बोधगम्यता मन को बराबर बाँधे रहती है। डॉ. शोभनाथ 'लाल' के शब्दों में–'राष्ट्रभारती के इस वरदपुत्र ने निःस्पृह जीवन जिया है, अमृत देकर विष पिया है, क्रान्ति का शंखनाद किया है, रोम–रोम में मधुरिमा समाई है, बच्चों की लोरियाँ गायी हैं, अनुराग के पराग बिखेरे हैं, काव्य कानन के कुशल चितेरे हैं, जिजीविषा के दृढ़ तार बनाये हैं, आस्था के अलख जगाये हैं, हमारे–आपके गीत गाये हैं। आप ही बताइये, हिन्दी के इस समर्थ कवि को क्या हम उचित स्थान दे पाये हैं? मधुरजी ने कोई महाकाव्य नहीं रचा, लेकिन इनकी एक–एक कविता राष्ट्रीय जनचेतना का महाकाव्य है। उत्सर्ग की प्रेरणा लिए इनकी भावना प्रधान राष्ट्रीय कविताएँ केवल जय–जय कार नहीं है।'

दिनकर जी ने 'उर्वशी' की पांडुलिपि तैयार करने के बाद उसे 11 फरवरी, 1959 को 'मधुर' जी को सुनाया। मधुरजी ने प्रथम सर्ग पर, जिसमें 'उर्वशी' के बचपन का वर्णन था, आपत्ति जाहिर करते हुए कहा था, 'भाई दिनकर! वेश्या अपने यौवन से जानी जाती है। उसका न कोई बचपन होता है और न ही उसे कोई जानने की कोशिश करता है।' दिनकरजी को उनका सुझाव पसंद आया और उन्होंने उस सर्ग को हटाकर नये छन्द जोड़े। तब जाकर उर्वशी का प्रकाशन हुआ।

'मधुर' जी के दर्शन करने जब मैं पहली बार उनके आवास पर पहुँचा था, तब मुवक्किलों के साथ विचार–विमर्श करने में वे मशगूल थे। उन दिनों मैं बलिया शहर के राजकीय इंटर कॉलेज में इंटरमीडियट का छात्र था और कॉलेज के सामने ही जगदीशपुर महल्ले में अवस्थित उनके मकान में बगैर पूर्व सूचना के ही अनायास चला गया था। मगर जब उन्होंने सबको बाहर छोड़, मुझ अपरिपक्व किशोर को अंदर ले जाकर आत्मीयतापूर्ण बातें की थीं, तब मुझे उनकी दरियादिली का अहसास हुआ था। ऐसा लगा ही नहीं कि पहली बार उनसे मिल रहा था। फिर तो गाहे–बगाहे उनके दर्शन करने जा पहुँचता और हर बार नई ऊर्जा, कोई गूढ़ सीख हासिल करके वापस लौटता। स्वभाव की विनम्रता और वाणी की मधुरता मधुरजी की खासियत थी। उनकी चुस्ती और फुर्ति देखकर हैरत होता था। सुबह चार बजे ही वे बिस्तर छोड़ देते थे और गंगा–स्नान के लिए चल पड़ते थे। नित्यकर्मों से निवृत्त हो, साढ़े सात बजे वकालत की सीट पर बैठ जाना और साढ़े दस से सायं पाँच बजे तक कचहरी में कार्यरत रहना उनकी दिनचर्या थी। अक्सर भोर की वेला में ही लेखन किया करते थे। कविताएँ गुनगुनाने के बाद ही लिखते थे। जब अनुभूति की मुद्रा गहनतम होती, तभी आप सर्जना किया करते थे।

हालाँकि जुलाई, 1985 में मधुर अभिनन्दन समारोह समिति, बलिया (उत्तरप्रदेश) ने डॉ. शोभनाथ 'लाल' के संपादन में 'राष्ट्रभारती के गायक मधुर' शीर्षक अभिनंदनग्रंथ प्रकाशित किया गया था, जिसमें उनके जीवनवृत्त एवं साहित्ययात्रा पर शोधपरक सामग्री दी गई थी और उसके पूर्व फरवरी, 1968 में बलिया व गाजीपुर जिलों के संयुक्त तत्वावधान में अंतरग्रामीय सुहृद सम्मेलन में मधुरजी का सार्वजनिक अभिनंदन किया गया था तथा उक्त अवसर पर 'विहान', 'बलिया समाचार', 'गाजीपुर समाचार' ने 'मधुर सम्मान विशेषांक' प्रकाशित किये थे, मगर दुर्भाग्यवश उनके कालजयी साहित्य का न तो सम्यक् आकलन हो पाया, न उनको वे सम्मान मिल पाये, जिनके वे सही मायने में हकदार थे। उन्होंने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की थी, क्योंकि उनकी प्रतिबद्धता शिविरबंदी में नहीं, सृजनशीलता में थी। यही वजह है कि आखिरी साँस तक (निधन आठ जून, 1990 को) वे रचनाशील रहे और 'श्रीराम की पुष्पक यात्रा' को सर्जनात्मक अंजाम देकर चुपके से अंतिम यात्रा पर निकल गए।

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी की परंपरा के मूर्धन्य कवि के रूप में क्रान्ति, करुणा, मानवता व बालमनोविज्ञान के समन्वित स्वरों को मुखरित करनेवाले राष्ट्रभारती के उस मौन मधुर साधक की पावन स्मृति को मेरी प्रणामांजलि, उन करोड़ों जन–जन की श्रद्धांजलि, जिनके लिए दिल्ली आज भी दूर है।

आलेख

मुक्तिबोध–मुक्तिबोध है

डॉ. श्रीनलिनी श्रीवास्तव 'शिवायन'
भिलाई, मध्यप्रदेश
मो. 9752606036

''जिंदगी एक खेल है, इसे खेलने की जरूरत है
न हारने की जरूरत है न जीतने की जरूरत है।''

मुक्तिबोध जी ने अपने जीवन को एक खेल की तरह जीने का संकल्प लिया। मुक्तिबोध जी केवल कल्पना में विचरण करनेवाले कवि नहीं थे। वे अनुभूति व चिंतन की गहराई में विचरते थे। इसीलिए जीवन द्वंद्वके विश्लेषण को वे कविता का अनिवार्य अंग मानते थे। मुक्तिबोध अपनी संवेदना वातावरण की सत्यता को लेखनी से अभिव्यंजित करने में ही पूर्ण रूप से समर्पित रहे हैं। यही कारण है कि मुक्तिबोध...मुक्तिबोध है।

ग्वालियर रियासत के मुरैना जिले में शियोपुर स्थान पर 13 नवम्बर सन् 1917 को मराठी परिवार में हुआ। आपके पिताश्री माधवराम सज्जना के प्रतिमूर्ति थे। धर्मदर्शन के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। आपकी माता पार्वती देवी स्नेहिल स्वभाव की और पढ़ने–लिखने में विशेष रुचि रखनेवाली महिला थी। पिताजी आपको वकील बनाना चाहते थे, परन्तु अपनी रुचि के अनुकूल अध्यापन कार्य को ही अपनाया। कुछ समय तक वाराणसी से प्रकाशित होनेवाली साहित्यिक पत्रिका 'हंस' के संपादकीय विभाग में भी काम करते रहे। 1958 में आपने दिग्विजय महाविद्यालय राजनॉदगाँव में हिन्दी के प्रोफेसर नियुक्त हुए। यहीं पर आपने अपने जीवन का अंतिम पड़ाव शांति के साथ व्यतीत किये और अपनी विशिष्ट साहित्यिक कृतियों की संरचना करते हुए 11 सितम्बर, 1964 में चिरनिद्रा में विलीन हो गये।

वक्त बिना आहट के कैसे निकल जाता है, इसका अहसास हमें तब होता है, जब हम अतीत के सुनहरे दिनों की यादों में खो जाते हैं। 50 साल पहले मुक्तिबोध की लड़का उषा और मैं दोनों एक ही कक्षा की छात्रा थी। बचपन की उमंग की तरंग में डूबे हुए खेल की दुनिया में हम मस्त रहते थे। उस समय हमारे आकर्षण का केन्द्रबिन्दु मुक्तिबोधजी के घर की चक्करदार सीढ़ियाँ थीं। जिससे होकर हम छत पर पहुँच जाते थे। फिर उस छत में हम घंटों खेलते रहते थे। उस सीढ़ीवाले कमरे में मुक्तिबोध जी कुछ–कुछ लिखते रहते थे। उसके आसपास कागज के कितने टुकड़े पड़े रहते थे। उसे उठाकर हमलोग नाव या फिलफिली बनाकर खेलते थे। उस कागज में क्या लिखा है, यह जानने की कभी कोशिश नहीं करते थे। छत के ऊपर भी एक गुम्बज था, जिसमें लोहे के 6–7 सीढ़ियाँ चढ़कर पहुँचते थे। कभी हमलोगों को गुम्बज में बैठे देखते तो मुक्तिबोध जी हमें डाँटते भी थे। गिर जाओगे, तो तकलीफ किसे होगी। उनकी डाँट में भी स्नेह की फुहार थी। मैंने देखा है प्रतिदिन शाम को अपने पिता श्रीमाधव मुक्तिबोध का पैर दबाते थे। मुक्तिबोधजी अपने नाम के साथ पिताजी का नाम लिखते। जैसे गजानंद माधव मुक्तिबोध। अपने बच्चों के वे एक स्नेहिल पिता थे।

मुक्तिबोधजी के घर के नीचे बायीं तरफ एक कमरा था। उसमें रमेश भाई पढ़ते रहते थे। वहीं प्रायः शरद कोठारी जी, हरिशंकर परसाईजी आते रहते थे। उन्हें वे पार्टनर कहते थे। दिग्विजय कॉलेज के प्रांगण में 10–12 क्वार्टर थे, जिसमें सभी विषय के प्रोफसेर रहते थे। सभी का आपस में एक विशेष सौहार्द की भावना थी। एक परिवार जैसे रहते हैं। मुक्तिबोध जी की धर्मपत्नी शांता मुक्तिबोध को मेरी दादी बेटी मानती थी। वे प्रायः हमारे घर आया जाया करती थी।

मुक्तिबोधजी नई पीढ़ी के सर्वाधिक सजग कवि हैं। वे यथार्थ जीवन और जगत् तथा आधुनिक काव्यकला के संबंध में हमेशा चिंतन किया करते थे। इस संबंध में उनकी कुछ मौलिक स्थापनाएँ हैं, इस बौद्धिक चेतना का प्रभाव उनकी काव्य पर अनिवार्य रूप से पड़ा है। जो सजग कवि होते हैं, वे यथार्थ जीवन के घात प्रतिघात की अवहेलना नहीं करते। निराला और मुक्तिबोध के बिना आधुनिक कविता की कोई कल्पना संभव नहीं है। दोनों रचनाकारों के कृतित्व केवल मनुष्य की मुक्ति का नहीं, बल्कि कविता की मुक्ति का रचनात्मक दस्तावेज है। नयी कविता का आत्मसंघर्ष नए निबंध कामायनी एक पुनर्विचार इतना ही नहीं, उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित होनेवाली कृतियाँ 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'भूरी भूरी खाकल धूल', 'एक साहित्य की डायरी', 'नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र', 'काठ का सपना', 'सतह से उठता आदमी' तथा 'विपात्र' आदि–आदि।

बहुत कम रचनाकार अपने कृतित्व के माध्यम से रचना को नये सिरे से परिभाषित करने का प्रयास करते हैं। रचनाकार की मौलिकता ही उसे क्रांतिकारी बनने के लिए विवश कर देती है। परन्तु लेखक अपना धैर्य नहीं खोता है। एक समय था निरालाजी ने यह काम किया था। मुक्त–छंद के प्रवर्तक निराला को विशेष संघर्षों का सामना करना पड़ा, लेकिन उनकी सृजनात्मक प्रतिभा किसी बंधन में बंधकर धराशायी नहीं हुई, बल्कि निराला के कृतित्व ने हिन्दी साहित्य जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। निराला की 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' निराला की अनुपम कृति है।

निराला और मुक्तिबोध के बिना आधुनिक कविता की कोई कल्पना संभव नहीं है। दोनों रचनाकारों के कृतित्व न केवल मनुष्य की मुक्ति का, बल्कि कविता की मुक्ति का रचनात्मक दस्तावेज है।

अपने वस्तु संसार के प्रति मुक्तिबोध की प्रतिक्रियाएँ सीधी और तात्कालिक नहीं है। उनकी प्रतिभा इन प्रतिक्रियाओं को संगठित कर इन्हें एक समूचे अस्तित्व की व्यवस्था से जोड़ती है। परिणास्वरूप जीवन के किसी हिस्से के अनुभव, यातना बनकर अभिव्यक्त होती है।

स्पष्ट है कि मुक्तिबोध में भावुकता की जितनी गहराई है, उतनी ही चिंतन की गंभीरता है। वे वस्तुतः विचारक थे और उन्होंने काव्य के विभिन्न पक्षों का जीवन और जगत् की समस्याओं का गंभीरतापूर्वक विचार प्रस्तुत किया है। काव्य के क्षेत्र में भी उन्होंने चिंतन को बड़ी व्यग्रता से अभिव्यक्ति दी है। उनकी अभिव्यक्ति बड़ी ही तीव्र, सशक्त और पूर्ण होती है।

मुक्तिबोध काव्य भाषा और शब्दावली के बहुत बड़े प्रयोगकर्ता ओर कुशल शिल्पी थे। अभिव्यक्ति प्रक्रिया से जब उन्हें पूर्ण संतोष हो जाता था, तभी वे अपनी रचना को अंतिम रूप देते थे। उनका विश्वास था कि श्रेष्ठ कवि अभिव्यक्ति के दौरान नई खोजें भी कर लेता है। आप लिखते हैं–' अभिव्यक्ति का संघर्ष दीर्घ होता है। साथ ही यह अभिव्यक्ति संघर्ष भाषा को कुछ बदल देता है। उसे नवीन शब्द प्रयोग, उसे नवीन शब्द–योजना, नवीन अर्थवेत्ता, नई भंगिमाएँ और व्यंजनाएँ देता है।'

मुक्तिबोध का जीवन स्वयं एक दुखांत महाकाव्य था, जिसमें नैराश्य का बड़ा ही गहरा वातावरण परिलक्षित होता है। वे संघर्ष करते–करते टूट गए, पर अपने सिद्धांतों पर अड़े रहे। उनमें श्रेष्ठ जीवन आदर्शों तथा जीवन मूल्यों के प्रति बड़ा ही विश्वास था और इसी कारण उन्हें अनेक यातनाओं का सामना करना स्वीकार किया, परन्तु समझौता कभी नहीं किया।

मुक्तिबोध सिद्धांत के बड़े दृढ़ थे। अपने सिद्धांतों से उन्हें बड़ा स्नेह था, बड़ी ही आत्मीयता थी। सिद्धांतों के प्रति चर्चा करते हुए वे स्वयं कहते हैं–'अपने लक्ष्यों के प्रति हार्दिक स्नेह के बिना जिज्ञासा, आत्म–संस्कार, आत्म निरीक्षण तथा आत्म–संघर्ष सब व्यर्थ हैं। लक्ष्यों के प्रति दुर्दान्त स्नेह की आस्तिकता के बिना वास्तविकता अस्मिता का विश्वास नहीं हो सकता और उन्हीं के संदर्भ में हमेशा यह जाना जाएगा कि कवि किस तरह से बोल रहा है।'

मुक्तिबोध के काव्य में संघर्ष और कटु अनुभव के चित्रों की बड़ी मार्मिकता लक्षित होती है। आर्थिक विवशता उनके जीवन की स्थायी समस्या थी। सतत आर्थिक विवशता ने उनके जीवन को निराश बना दिया था। यद्यपि अन्य रचनाएँ भी इस दिशा में योगदान दिया करती थीं। जीवन के अंत में किसी भी आर्थिक कष्ट अथवा दुर्घटना को झेलने के लिए तैयार रहते थे। उन्हें कोई आशंका दुर्घटना त्रस्त नहीं करती, क्योंकि इन बातों को सहन करने की आदत–सी बन गयी थी। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है–'यह पंक्ति अतीत और वर्तमान को शाश्वत पदार्थों के संग्रह को स्याह पहाड़ की संज्ञा प्रदान करते हुए उसकी भयावह कुरूपता का इशारा कितना संगीन है।'

आज के अभाव के
वे कल के उपवास के
वे परसों की मृत्यु के
दैन्य के, महा अपमान के
व क्षोभपूर्ण भयंकर चिंता के
उस पागल यथार्थ की
दीखता...पहाड़...स्याह।''

मुक्तिबोध कवि के साथ महान् चिंतक भी थे। आपके जीवनकाल में तीन समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाशित हो गया था। 'नई कविता का आत्म संघर्ष', 'नए निबंध' तथा 'कामायनी एक पुनर्विचार'। तारसप्तम में भी आपकी कुछ कविताएँ प्रकाशित हुईं।

सच तो यह है कि मुक्तिबोध नई पीढ़ी, नई धारा के सर्वाधिक चर्चित कवि हैं, जिन्होंने अपने काव्य में आधुनिक परिवेश में मनुष्य की व्याकुलता, छटपटाहट, घुटन व पीड़ा को अपनी आत्मचेतना की भीषण आँधी को बड़े ही स्पष्ट और संयत शब्दों में व्यक्त किया है। मुक्तिबोध सामाजिक मर्यादाओं से घिरे हुए पितृभक्त एवं पुत्रवत्सल स्नेहिल पिता की भूमिका में उनका जीवन समर्पित था।

मुक्तिबोध की अंतरात्मा से निकली संवेदनाओं की ईमानदारी ही आज उन्हें कालजयी बनाने के लिए पर्याप्त है। मुक्तिबोधजी ने अपनी रचनाओं के सामान्य जन की संवेदना पीड़ा, घुटन, निराशा से दुःखी होकर अपने सुसंस्कृत वर्ग की पोल खोली। राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होनेवाले शोषण, भ्रष्टाचार को अपनी रचनाओं में लिपिबद्ध किया है। आधुनिक साहित्य की विसंगतियों पर भी आपने विशेष व्यंग्य किया है। आपकी काव्य संवेदना ड्राइंग रूम की संस्कृति संवेदना नहीं है। उत्पीड़ित शोषण के अत्याचार से व्यथित लोगों का दुःख आपकी रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। उनकी चिंता से मन कितना व्यथित था, इसकी स्पष्ट वानगी दर्शनीय है–

''मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में सुखी मानव
सुखी, सुन्दर व शोषण मुक्त कब होंगे।''

आपकी भाषा सरस स्वभावयुक्त व तद्भव शब्दावली का विशेष प्रयोग किया है। मुहावरों और लोकोक्तियों का भी आपने प्रयोग किया है। आपकी भाषा कथ्य के अनुरूप प्राणवान हैं। मुक्तिबोधजी के विचार उन्हीं के शब्दों में–

''मैं कौन हूँ?मैं एक महाभूत सत्य हूँ
परमाणु केन्द्रों के आसपास अपने गोल पथ पर घूमते हैं अंगारे
घूमते हैं इलेक्ट्रॉन जिन रश्मि पथ पर
ब्रह्मांड अनुभव पा सकूँ हृदय में, सीख सकूँ विराट गलतियाँ
सारे ब्रह्मांड की संवेदनाओं
मुझमें समाहित हो, ऐसी देती आकांक्षा है।''

कविताएँ

सोनी सिन्हा
नाथनगर भागलपुर
मो0–7004732069

अपना घर और मजबूरी

घरोंदा टुकड़ों में बँटा हमारा
जिसे प्यार से सालों सँवारा
चूर होने लगे सारे सपने
दूर होने लगे सारे अपने

उनके दिलों में नहीं अब हम
रहा नहीं दूर होने का गम
किसी के जख्मों पर नहीं आज
किसी के प्यार का मरहम

देख मंजर दिल गया सहम
क्या थे क्या हो गये हम
लगता है सच नहीं ख्वाब है
या जैसे खुली आँखों का बहम

आई दीपवली का त्योहार
घर में नहीं पहले सा बहार
दिया नहीं जल रहा जलता है
अपनों का स्नेह और प्यार

जाने कहाँ गया वो प्रेम
नजरों की खिड़कियों से
नफरत झाँकने लगी है
साँप सी काटने लगी है

दर्द से भरपूर पर है जिंदा
लाख मजबूर और हो निंदा
लाख होवें हम शर्मिन्दा
रहेगी मगर ममता जिंदा।

2. सफर प्रभात से रात का

सुबह दबे पाँव क्या है आया
संग अपने खामोशी है लाया
उदासी लाई दिन की शुरुआत
ऐसा हुआ आज का प्रभात

दोपहरी मुँह मोड़ी हमसे
भरी हुई है जैसे गम से
खाली–खाली मन की देहरी
ऐसी हुई हाय ये दोपहरी

ऐसी चुप–चुप सी है शाम
जैसे इसका जीवन में नहीं काम
छलक रहा है आँसुओं का जाम
गमों से भरी आज की शाम

ये रात तो गुजर ही जायेगी
नई सुबह जीवन महकायेगी
बिखरे अपने दिल को थाम
आयेगी सुबह लेकर पैगाम।

आलेख:

समकालीन परिवेश में नारी विमर्श

आकांक्षा यादव
पोस्टल आफिसर्स कॉलोनी, जोधपुर
राजस्थान मो.–9413666599

नारी विमर्श, नारीवाद, नारी अस्मिता, नारी स्वातंत्र्य, नारी सशक्तिकरण जैसे तमाम विषय आज पूरी दुनिया में गंभीर बहस का विषय है। इन पर अकादमिक से लेकर राजनैतिक स्तर तक और घरेलू से लेकर सामाजिक और आर्थिक स्तर तक बहसें हो रही हैं। औपचारिक से लेकर अनौपचारिक स्तर तक चल रही इस पहल ने नारी के भीतर एक नई शक्ति और संभावनाओं के नए युग की शुरुआत की है। इसने जहाँ नारी के भीतर अधिकारों की लौ जलाई है, वहीं उन्हें अपने अधिकारों के लिए सतत संघर्ष करना भी सिखाया है। कभी अरस्तू ने कहा था–"स्त्रियाँ कुछ निश्चित गुणों के अभाव के कारण स्त्रियाँ हैं।" तो संत थॉमस ने स्त्रियों को "अपूर्ण पुरुष" की संज्ञा दी थी, पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ऐसे तमाम सतही सिद्वान्तों का कोई अर्थ नहीं रह गया एवं नारी अपनी जीवटता के दम पर नए आयाम गढ़ रही है। नारी आज न सिर्फ सशक्त हो रही है, बल्कि लोगों को भी सशक्त बना रही है।

वैश्विक स्तर पर देखें तो नारी विमर्श का उदय पश्चिम में हुआ माना जाता है। पाश्चात्य दार्शनिक और विचारक एच.टी. मिल तथा जे.एस.मिल ने सर्वप्रथम निबंधों की एक सीरीज प्रकाशित की, जिसमें कहा गया कि स्त्रियोचित तथा पुरुषोचित गुणों का विकास सामाजिक परिवेश पर निर्भर करता है। वास्तव में स्त्रियों की सामाजिक पराधीनता को समाप्त करना आज के दौर में सबसे आवश्यक है। उन्हें सामाजिक और आर्थिक अवसर तथा शिक्षा उपलब्ध कराना ही सही अर्थों में न्याय दिलाने में उपयोगी साबित होगा। कालांतर में नारी विमर्श ने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर सामाजिकता के साथ–साथ आर्थिक स्वतंत्रता को भी दर्शाया। उसके बाद उग्र नारीवाद आया। इसमें यह कहा गया कि पुरुष द्वारा स्त्री का शोषण सर्वत्र और हर समाज में होता है। वहीं प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिमोन द बोउआर ने कहा–"स्वाभाविक तौर पर स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसमें लिंगभेद की चेतना पैदाकर उसके स्त्री होने का अहसास कराया जाता है। स्त्री–पुरुष समता में शरीर न तो बाधक है, न बंधक। समाज की मनोवृत्ति में बदलाव किये बिना विमर्श के लाभ को पूरी तरह प्राप्त करना संभव नहीं है।"

नारियों को अपनी पहचान बनाने लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। 1900 के आरंभ में 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' मनाने की शुरुआत हुई थी। वर्ष 1908 में न्यूयार्क के एक कपड़ा मिल में काम करनेवाली करीब 15 हजार महिलाओं ने काम के घंटे कम करने, बेहतर वेतन और वोट का अधिकार देने के लिए प्रदर्शन किया था। इसी क्रम में 1909 में अमेरिका की ही सोशलिस्ट पार्टी ने पहली बार नेशनल वुमन–डे मनाया था। वर्ष 1910 में डेनमार्क के कोपेनहेगन में कामकाजी महिलाओं की अंतर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस हुई, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला दिवस मनाने का फैसला किया गया और 1911 में पहली बार 19 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। उस समय इसका प्रमुख ध्येय महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिलवाना था; क्योंकि उस समय अधिकतर देशों में महिलाओं को वोट देने का अधिकार नहीं था। इसे सशक्तिकरण का रूप देने हेतु लाखों महिलाओं ने रैलियों में हिस्सा लिया। 1911 में ही महिलाओं के अधिकार के लिये लड़नेवाली नेन्सी एस्टर, ब्रिटिश संसद की पहली महिला सासंद बनीं। जैसे–जैसे महिलाएं मुखर होती गई, आंदोलनों दायरा भी बढ़ता गया। 1917 में रुस की महिलाओं ने, महिला दिवस पर रोटी और कपड़े के लिये हड़ताल पर जाने का फैसला किया। यह हड़ताल भी ऐतिहासिक थी। अंततः जार ने सत्ता छोड़ी और अन्तरिम सरकार ने महिलाओं को वोट देने के अधिकार दिये। उस समय रुस में जुलियन कैलेंडर चलता था और बाकी दुनिया में ग्रेगेरियन कैलेंडर। इन दोनों की तारीखों में कुछ अन्तर है। जुलियन कैलेंडर के मुताबिक 1917 की फरवरी का अंतिम रविवार 23 फरवरी को था, जबकि ग्रेगेरियन कैलैंडर के अनुसार उस दिन 8 मार्च था। इस समय पूरी दुनिया में (यहाँ तक कि रूस में भी) ग्रेगेरियन कैलैंडर चलता है। तबसे विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के प्रति सम्मान, प्रशंसा और प्यार प्रकट करते हुए 8 मार्च को महिलाओं के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उपलब्धियों के उपलक्ष्य में महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है।

यद्यपि नारी आंदोलन और विमर्श की जड़ें पाश्चात्य देशों में खोजी जाती हैं, पर भारत में भी आरंभ से ही इसके सूत्र मिलते हैं। भारतीय संस्कृति में नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वह शिव भी है और शक्ति भी, तभी तो भारतीय संस्कृति में सनातन काल से अर्धनारीश्वर की कल्पना सटीक बैठती है। शास्त्र से लेकर साहित्य तक नारी की महत्ता को स्वीकार किया गया है, "यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता।" सिंधु संस्कृति में भी मातृदेवी की पूजा का प्रचलन परिलक्षित होता है। नारी का कार्यक्षेत्र न केवल घर, बल्कि सारा संसार है। प्रकृति ने वंश वृद्धि की जो जिम्मेदारी नारी को दे रखी है, वह न केवल एक दायित्व है, अपितु एक चमत्कार और अलौकिक सुख भी है। इन सबके बीच नारी आरंभ से ही अपनी भूमिकाओं के प्रति सचेत रही है। 'नारीवाद' या 'फेमिनिज्म' के रूप में नारी द्वारा अपने अधिकारों के लिए की जानेवाली लड़ाई सदियों पुरानी है। भारतीय संदर्भ में देखें तो हमारे वेद और ग्रंथ नारी शक्ति के योगदान से भरे पड़े हैं। विश्ववारा, अपाला, लोमशा, लोपामुद्रा तथा घोषा जैसी विदुषियों ने ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की रचना करके और मैत्रेयी, गार्गी, अदिति इत्यादि विदुषियों ने अपने ज्ञान से तब के तत्वज्ञानी पुरुषों को कायल बना रखा था। नारी को आरंभ से ही सृजन, सम्मान और शक्ति का प्रतीक माना गया है। जब गार्गी याज्ञवल्क्य के साथ संवाद करती है, तो कहीं–न–कहीं वह नारी अस्मिता और इसके सशक्तिकरण की लड़ाई लड़ रही होती है। इसी प्रकार जब शकुंतला, दुष्यंत द्वारा न पहचाने जाने पर उन्हें भला–बुरा कहकर वहाँ से लौटने लगती है, तो वो भी वहाँ अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रही होती है। महाभारत काल में जब द्रौपदी भरी सभा में अपने अपमान पर वहाँ उपस्थित लोगों से धर्म का अर्थ पूछती है और अपने पतियों को धिक्कारती है, तो वहाँ भी एक तरह का नारीवाद है। नारी ने जब–जब आवाज उठाई, उसकी आवाज को कुंद करने का प्रयास किया गया; लेकिन उसका संघर्ष भी उतना ही पुराना है। पश्चिम में भले ही उसे 'नारीवाद' नाम मिल गया हो; लेकिन स्त्री की अपनी अस्मिता, अस्तित्व और अधिकारों की ये लड़ाई प्रायः हर देश–काल में मौजूद थी और सदियों पुरानी है।

नारी मुक्ति आन्दोलन से नारी ही प्रथमतः जुड़ी, जिसकी अभिव्यक्ति उसके लेखों, नारों इत्यादि में दिखायी देती है। लिंगीय विभेद के प्रश्न को उठानेवाली प्रथम पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तक सिमोन द बोउआर (जैम `मबवदक`मग .1949) थीं। अस्तित्ववादी विचारों की पोषक बोउआर ने स्त्रियों के विरुद्ध होनेवाले अत्याचारों और अन्यायों का विश्लेषण करते हुए लिखा, "पुरुष ने स्वयं को विशुद्ध चित्त (ठमपदह.वित. पजेमसरू स्वयं में सत्) के रूप में परिभाषित किया है और स्त्रियों की स्थिति का अवमूल्यन करते

हुए उन्हें "अन्य" के रूप में परिभाषित किया है व इस प्रकार स्त्रियों को "वस्तु" रूप में निरूपित किया गया है। बोउआर का मानना था कि स्वयं स्त्रियों ने भी इस स्थिति को स्वीकार कर लिया। 19वीं सदी की महान नारीवादी ब्रिटिश लेखिका वर्जीनिया वुल्फ की 'ए रूम ऑफ वन्स ओन' से लेकर तस्लीमा नसरीन की 'औरत के हक में', हिंदी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की 'आज की नारी' और प्रभा खेतान की 'बाजार के बीच, बाजार के खिलाफ' जैसी तमाम पुस्तकें नारी विमर्श को बढ़ावा देती हैं। वृंदा करात की 'भारतीय नारी संघर्ष और मुक्ति', इतालवी पत्रकार और लेखिका ओरियाना फेलेसी की 'एक खत अजन्मे बच्चे के नाम', तथा जेस्मिन लोरेंस की 'महिला श्रमिक : सामाजिक स्थिति एवं समस्याएँ', ऐलिन मोर्गन की 'नारी का अवतरण' जैसी तमाम पुस्तकें स्त्री समाज के विभिन्न आयामों को उनके परिवेश के साथ प्रतिबिंबित करती हैं और उनका विश्लेषण करती नजर आती हैं। व्यापक सरोकार को समेटे इन तमाम कृतियों के केंद्र में स्त्री का संघर्ष और अस्मिता है। ये न तो नारेबाजी में उतरती हैं, न किसी हवालोक में जाकर कोई आदर्शवादी चित्र प्रस्तुत करने की राह पकड़ती हैं। उनके पास खुद के भोगे गए यथार्थ अनुभव और अपने परिवेश की घटनाओं की पूँजी है, जिससे नारी विमर्श आकार लेता है।

नारीवादी विमर्श किसी एक कालखण्ड से बँधा हुआ नहीं है, बल्कि यह वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अतीत का विश्लेषण करता है। भारतीय सभ्यता–संस्कृति में भी यह स्त्री की ऐतिहासिक अवस्थिति को पहचानने की कोशिश करता है। स्त्री की पीड़ा यह है कि उसे अपनी बात कहने का हक ही नहीं दिया गया। जब स्त्री ने कुछ कहने की सोची, तो उसे उसके दायरे में कैद कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्री की रचनात्मकता और वैचारिकता का प्रस्फुटन ही उसकी मानसिक पीड़ा और समस्या बन गई। इससे स्त्री के अंदर का छुपा सच समाज के सामने नहीं आ पाया। यह भी सोचने का विषय है कि जहाँ एक ओर अभिव्यक्ति के लिए नारे लगाए जाते हों, वही दूसरी ओर स्त्री को अपनी बात भी कहने का अधिकार न हो। स्त्री की वेदना का अनुभव–संसार कितना बड़ा है, लेकिन हमेशा उसे सामाजिक पटल पर आने से रोका जाता रहा। भारतीय संस्कृति में एक ओर स्त्री को देवी मानने का आदर्श रहा है, तो दूसरी ओर पुरुष प्रधान सत्ता के तहत स्त्री को अधीनस्थ बनाए रखने का यथार्थ भी। तभी तो डॉ. राम मनोहर लोहिया जैसे विचारक स्त्री को परतंत्र बनानेवाली विभिन्न शक्तियों और उनके आपसी संघात को देखते हैं और मानते हैं कि स्त्री की स्थिति जैविक रुप से एक खास शारीरिक इकाई होने का ही प्रतिफल नहीं, बल्कि स्त्री की परतंत्रता, जाति, वर्ग, धर्म जैसे कारकों का भी प्रतिफल होती है। धर्म और संस्कृति के सहारे पितृसत्ता स्त्री के एक स्वतंत्रचेता व्यक्तित्व होने की संभावनाओं को नष्ट करती रही है। अभी भी तमाम धार्मिक स्थलों पर नारी के प्रवेश को लेकर तमाम बंदिशें हैं। हिंदू समाज में उसी स्त्री को आदर्श माना गया, जो मनसा–वाचा–कर्मणा पति की अनुगामिनी रही हो। निर्गुण रूप में वह स्त्री को देवी मानता है, सगुण में दासी। लोहिया कहते हैं कि पुरुष स्त्री को प्रतिभासम्पन्न और बुद्धिमती भी बनाना चाहता है और उसे अपने कब्जे में भी रखना चाहता है। दूसरे शब्दों में कहें, तो आज के दौर में पुरुष को ऐसी स्त्री चाहिए, जो अपने कौशल में तो अंग्रेज स्त्रियों की तरह हो; लेकिन भारतीय संस्कृति यानी पुरानी पितृसत्ता की संवाहक भी हो।

भूमंडलीकरण के बाद के प्रभावों, प्रतिफलों, सरोकारों और चिंताओं से नारी विमर्श भी अछूता नहीं रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति कई बार नारी को एक आब्जेक्ट के रूप में पेश करती है, जिसे केवल उपभोग करना है, मानो उसकी कोई भावना ही नहीं। ऐसे में पाश्चात्य सभ्यता के समर्थक कुछ लोगों को नारी स्वतंत्रता का रास्ता दैहिक वर्जनाओं को तोड़ने और उन्मुक्तता में दीखा। महिलाओं को बाजार में उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री में लुभाने के अंदाज के कारण भी यह स्थिति उत्पन्न हुई। कई समकालीन विद्वान स्त्री की अस्मिता और स्वतंत्रता को उसकी यौन स्वतंत्रता की परिधि में ही सीमित रखने की रूढ़ि के शिकार हैं। समाज का एक बड़ा वर्ग अब स्वीकारता है कि स्त्री को 'सेक्स' का पर्यायवाची बनाकर 'यौन प्राणी' मात्र बना दिया गया अर्थात पुरुष को विषयी, निरपेक्ष व स्वायत्त रूप में एवं स्त्री को विषय, अन्य, सापेक्ष व पराधीन रूप में माना गया। इस प्रकार एक चेतन वर्ग द्वारा दूसरे चेतन वर्ग को अधीनता प्रदान की गयी और दूसरे वर्ग ने अपनी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार स्त्री–पुरुष में एक द्वैत की स्थापना की गई है। एक विचारक के शब्दों में, "पुरुषों की नैतिकता महज सेक्स तक सीमित है, लेकिन स्त्री की नैतिकता को उसके व्यवहार से जोड़ दिया गया है।" ऐसे में मॉरल–पुलिसिंग के नाम पर नैतिकता का समस्त ठीकरा महिलाओं के सिर पर थोप दिया जाता है। समय–समय पर महिलाओं के वस्त्र–चयन को लेकर, शिक्षा, घूमने–फिरने इत्यादि को लेकर नियम बनाये जाते हैं। कई बार तो सुनने को भी मिलता है कि महिलाएँ अपने पहनावे से ईव–टीजिंग को आमंत्रण देती हैं, मानो वे सेक्स ऑब्जेक्ट हों। इन दोनों छोरों के बीच नारी अपनी अस्मिता के लिए दोहरा संघर्ष करती है। आज नारी अपने अस्तित्व और अस्मिता दोनों के प्रति सजग हो रही है।

नारी अस्मिता एक व्यापक शब्द है, जिसमें वह एक तरफ तो घरेलू मोर्चे पर लड़ती है, वहीं घर से बाहर भी उसे अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़नी होती है। वस्तुतः उसका यथार्थ जीवन इतना कटु है कि उसके अपने सपने कब खत्म हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। अपनी अस्मिता की तलाश भी वह कल्पना लोक में ही करती रहती है। तभी तो सिमोन द बोउआर ने कहा था–"नारी का बड़बड़ाना भी उसका विरोध दर्ज करना है।" यह अनायास ही नहीं है कि नारी स्वातंत्र्य के नाम पर चल रहे तमाम आंदोलनों और विमर्शों को कई बार परम्परागत मूल्यों के विपरीत बताते हुए अराजक तक कह दिया जाता है। नारी की प्रगतिशील प्रवृत्ति को भी कई बार स्वच्छंदता मान लिया जाता है या फिर स्वच्छंदता की आड़ में स्वतंत्रता पर बंधन लगाने की मानसिकता भी कार्य करती है। वस्तुतः स्वतंत्रता, स्वच्छंदता नहीं है, बल्कि यह एक मर्यादा के भीतर अपने अधिकारों का सम्यक् प्रयोग और कर्तव्यों का संतुलित निर्वहन है। नारी समाज का एक वर्ग ऐसा भी है, जो अभी भी सिर से पाँव तक पूरे कपड़े पहने अपनी बौद्धिकता और जीवटता के दम पर समाज की रूढ़िगत वर्जनाओं को तोड़ने का साहस रखता है। वस्तुतः भूमंडलीकरण के दौर में नारी अपनी शिक्षा एवं सजगता के चलते जहाँ आत्मविश्वास हासिल कर रही है, वहीं घरेलू उत्पीड़न, उपभोग्यता और उपयोगिता से मुक्ति के साथ–साथ अपनी स्वतंत्र अस्मिता व अस्तित्व के प्रश्न को एक नये सिरे से उठा रही है। स्त्री के इतिहास और मिथक में चित्रित रूपों से, अतिरंजना की परत को हटाकर नारीवादी विमर्श उसके यथार्थ को प्रस्तुत करता है।

आज नारी जीवन के हर क्षेत्र में कदम बढ़ा रही है। वह अपने कर्तव्यों को गृहकार्यों की इतिश्री ही नहीं समझती है, बल्कि अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति भी सजग है। वस्तुतः समाज की यह पारंपरिक सोच कि महिलाओं के जीवन का अधिकांश हिस्सा घर–परिवार के मध्य व्यतीत हो जाता है और बाहरी जीवन से संतुलन बनाने में उन्हें समस्या आएगी, बेहद दकियानूसी लगती है। आज एक महिला घर में अकेले जितना कार्य करती है, उसका मोल कोई नहीं समझता। पुरुष इसे महिला की ड्यूटी मानकर निश्चिन्त हो जाता है। यह उस स्थिति में भी है जबकि महिला भी कमा रही होती है। आज जरूरत इस बात की भी है कि जी.डी.पी. में महिलाओं के कार्य की गणना हो और घरेलू कार्यों को हवा में न उड़ाया जाय। इस अवधारणा को बदलने की जरूरत है कि बच्चों का लालन–पोषण और गृहस्थी चलाना सिर्फ नारी का काम है। यह एक पारस्परिक जिम्मेदारी है, जिसे पति–पत्नी दोनों को उठाना चाहिए। इस बदलाव का कारण महिलाओं में आई जागरूकता है, जिसके चलते वे अपने को दोयम नहीं मानतीं और कैरियर के साथ–साथ पारिवारिक–सामाजिक परम्पराओं के क्षेत्र में भी बराबरी का हक चाहती हैं। अब वे स्वयं के प्रति सचेत होते हुए अपने अधिकारों

के प्रति आवाज उठाने का माद्दा रखती हैं।

फेमिनिस्ट आन्दोलनों ने नगरीय जीवन में पली–बढ़ी महिलाओं पर तो प्रभाव डाला पर इधर जो एक नई प्रवृत्ति उजागर हुई है, वह है ग्रामीण अंचलों की अशिक्षित महिलाओं द्वारा रूढ़िवादी वर्जनाओं को तोड़कर नये प्रतिमान स्थापित करना। श्मशान में जाकर आग देने से लेकर महिलाएँ वैदिक मंत्रोच्चारण के बीच पुरोहिती का कार्य करती हैं और विवाह के साथ–साथ शांति यज्ञ, गृह प्रवेश, मुंडन, नामकरण और यज्ञोपवीत भी करा रही हैं। राजनीति, प्रशासन, समाज, उद्योग, व्यवसाय, विज्ञान–प्रौद्योगिकी, फिल्म, संगीत, साहित्य, मीडिया, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, वकालत, कला–संस्कृति, शिक्षा, आई.टी., खेल–कूद, सैन्य से लेकर अंतरिक्ष तक नारी ने छलांग लगाई है। नारी की नाजुक शारीरिक संरचना के कारण यह माना जाता रहा है कि वे सुरक्षा जैसे कार्यों का निर्वहन नहीं कर सकतीं। पर बदलते वक्त के साथ यह मिथक टूटा है। महिलाएँ आज पुलिस, सेना, और अर्द्धसैनिक बलों में बेहतरीन तैनाती पा रही हैं। अब जागरूक नारी समाज की अवहेलना करना आसान नहीं रहा। आज वह स्वयं को सामाजिक पटल पर दृढ़ता से स्थापित करने को व्याकुल है। शर्मायी–सकुचायी सी खड़ी महिला अब रूढ़िवादिता के बंधनों को तोड़कर अपने अस्तित्व का आभास कराना चाहती है। महिलाओं को सम्पत्ति में बेटे के बराबर हक देने हेतु हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन, घरेलू महिला हिंसा अधिनियम, सार्वजनिक जगहों पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध नियम एवं लैंगिक भेदभाव के विरुद्ध उठती आवाज नारी को मुखर कर रही है। दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह, शराबखोरी, लिंग विभेद जैसी तमाम बुराइयों के विरुद्ध नारी आगे आ रही है। ये सभी घटनाएँ अधिकारों से वंचित नारी की उद्विग्नता को प्रतिबिंबित कर रही हैं।

वर्तमान समय में नारी अपनी सम्पूर्णता को पाने की राह पर निरंतर बढ़ रही है, ताकि समाज के नारी विषयक अधूरे ज्ञान को अपने आत्मविश्वास की लौ से प्रकाशित कर सके। नारी सृजन की प्रतीक है। हमारे यहाँ साहित्य और कला में नारी के कोमल रूप की कल्पना की गई है। कभी उसे कनक–कामिनी तो कभी अबला कहकर उसके रूपों को प्रकट किया गया है। पर आज की नारी इससे आगे है। वह न तो सिर्फ कनक–कामिनी है और न ही अबला, इससे परे वह दुष्टों की संहारिणी भी बनकर उभरी है। नारी की यौनिकता पर चोट करनेवालों को नारियों ने करारा जवाब दिया है। वे नारी देह की बजाय उसके दिमाग पर जोर देती हैं। उनका मानना है कि दिमाग पर बात आते ही नारी पुरुष के समक्ष खड़ी दिखायी देती है, जो कि पुरुषों को बर्दाश्त नहीं। इसी कारण पुरुष नारी को सिर्फ देह तक सीमित रखकर उसे गुलाम बनाये रखना चाहता है। यहाँ पर अमृता प्रीतम की रचना 'दिल्ली की गलियाँ याद आती हैं, जब कामिनी नासिर की पेंटिग देखने जाती है तो कहती है, तुमने 'वुमेन विद फ्लॉवर', 'वुमेन विद ब्यूटी' या 'वुमेन विद मिरर' को तो बड़ी खूबसूरती से बनाया पर वुमेन विद माइंड बनाने से क्यों रह गए। निश्चितत: यह कथ्य पुरुष वर्ग की उस मानसिकता को दर्शाता है, जो नारी को सिर्फ भावों का पुंज समझता है, एक समग्र व्यक्तित्व नहीं। दरअसल नारी को 'मर्दवादी यौनिकता' से परे एक स्वतंत्र व समग्र व्यक्तित्व के रूप में देखने की जरूरत है। आज जरूरत है, नारी जाति की उपलब्धियों को पितृसत्तात्मक समाज में स्वीकार किया जाना और उनकी उपलब्धियों की हर कीमत पर रक्षा करते हुए विस्तार।

नारी अस्मिता और विमर्श के नये आयामों, सवालों को नारी आन्दोलन और वैचारिक संघर्ष के केन्द्र में लाकर नारी अपनी नयी पहचान बना रही है। इसमें कोई शक नहीं कि नारी अस्मिता और सशक्तिकरण के संघर्ष को प्रभावी बनाने के लिए जरूरी है कि नारी अपना पक्ष खुलकर रखे, और एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में अपनी स्थिति को जाने, उसे बदले और नये विकल्पों का निर्माण करे। नारी सशक्तिकरण के माध्यम से ही सामाजिक तानेबाने को और अधिक मजबूत किया जा सकता है। यह इक्कीसवीं सदी के बदलते समाज का जटिल यथार्थ है, जिसमें कोई फंतासी भरा नायक या प्रतिनायक नहीं, बल्कि साधारण–सी दिखनेवाली तमाम नायिकाएँ हैं, जो मिल–जुलकर अपने समय का आख्यान रच रही हैं।

डॉ.केवलकृष्ण पाठक
9416389481

प्रेम का प्रकाश होगा

दीप को जलने दो साथी, घर में तब प्रकाश होगा
सत्य पथ पर चलने से ही कलुषता कलश होगा
सोचकर देखो तुम्हारे घर में क्यों कूड़ा भरा है
इतना है अंधकार घर में कूड़ा तो दीखता नहीं है
घर में हो प्रकाश तब ही कूड़ा–कंकर साफ होगा
दीप को जलने दो साथी, घर में तब प्रकाश होगा

अपने मन में है अंधेरा तब ही मन में कलुषता है
द्वेष हिंसा व घृणा का राग सबको कुचलता है
दीप मन में ही जलाकर प्रेम का प्रकाश होगा
दीप को जलने दो साथी, घर में तब प्रकाश होगा

प्रेम पनपेगा तो फिर कोई ना शोषण कर सकेगा
देश में हो भाईचारा तब ही यह फुले फलेगा
मधुर हो व्यवहार तो फिर सबके मन में प्यार होगा
दीप को जलने दो साथी, घर में तब प्रकाश होगा।

ऊषा श्रीवास्तव
पक्की सराय, मुजफ्फरपुर
9334904712

मैं सुमन की आँजुरी हूँ

हूँ समर्पित आपको, सर्वस्व तन–मन–धन हृदय से
तुम हमारे साँवरे हो, मैं तुम्हारी साँवरी हूँ
कौन सा जादू चला या, आप छलिया हमीं पर
मूँद नयनों में अमिट छवि, मैं तुम्हारी बावरी हूँ
आपके प्यारे परस से, सप्त स्वर मधु राग गुंजित
तु अधर आधार मेरे, मैं तुम्हारी बाँसुरी हूँ
आप में ऐसी मधुरता, मुग्ध करती है सभी को
तुम हमारे मधुर मोहन, मैं तुम्हारी माधुरी हूँ
प्रेमरस रग–रग प्रवाहित, कर दिया तन–मन सुवासित
तुम सुरभिमय कोष परिमल, मैं सुमन की आँजुरी हूँ।

आलेख :

बाजार लीला से प्रभावित मध्यकालीन हिन्दी काव्य

डॉ0 छोटेलाल गुप्ता
सहायक प्रोफेसर बी.आर.बी विश्वविद्यालय
मुजफ्फरपुर, मो0 9085210732

आज बाजार की लीला सबसे सम्मोहक रूप धरकर नित्य नये ढंग से प्रकट हो रही है। बाजार का सर्वव्यापी स्वरूप अपना विराट् रूप दिखाता हुआ सबको अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। आधुनिक साहित्य में तो इस बाजार के स्वरूप पर विस्तार से लिखा ही जा रहा है, अन्य क्षेत्रों में भी इसके प्रभावों का गहन अध्ययन प्रारंभ हो चुका है; क्योंकि इसका विस्तार हमारी आर्थिक नीतियों, विदेश नीति और राजनीति को अपनी चपेट में लेते हुए आम जनजीवन को भी ग्रसने लगा है। कहा जा रहा है कि बाजार अब बड़े–बड़े वातानुकूलित मॉल से लेकर गली–गली के नुक्कड़ों पर भी पसर गया है। सिर्फ यही नहीं, उसका प्रवेश आम जनता के घरों में भी धड़ल्ले से हो गया है। इसके सर्वव्यापी स्वरूप से बचना किसी के लिए संभव नहीं रहा।

अब सारा वातावरण चीजों से पट गया है, चीजें उपयोगी हैं या नहीं, आवश्यक है या नहीं, बस बात से फर्क नहीं पड़ता। फर्क इस बात से पड़ता है कि चीजें दिखाई किस तरह से जाती है। कहावत है कि जो चीज दिखता है, वह बिकता है। इसलिए चीजों को दिखाने पर जोर है। प्रदर्शन, 'डिमोस्ट्रेशन' अब एक महत्वपूर्ण शब्द बन चुका है। जो चीज आपके लिए आवश्यक नहीं, उसे भी आप खरीदने को आतुर हो जाएँ, यहाँ तक कि उसके लिए कर्ज के दलदल में धँसने को भी तैयार हो जाएँ, यही बाजार की शक्तियाँ प्रेरित करने की तकनीकें ईजाद करती हैं।

बाजार का यह स्वरूप भयावह है। वाणिज्य अथवा व्यापार समाज को जीवित रखने की एक आवश्यक प्रणाली है, जो बाजार के माध्यम से संचालित होती है। यह समाज का श्वसनतंत्र है, इसे शोषक शक्तियों द्वारा नई तकनीकों से हथियाए जाने से समाज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। समाज का यह श्वसनतंत्र यदि अस्वस्थ हो जाता है, तो जीवन में कितनी ही विसंगतियों संवेदनहीनताएँ और धनोन्मुख लालसाएँ अपना असर दिखाने लगती हैं।

अपने मूलस्वरूप में बाजार एक स्वस्थ प्रणाली थां वह समाज के आर्थिक विकास के साथ–साथ आम जनजीवन को आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने के लिए शक्तिशाली माध्यम था। व्यापारी और ग्राहक का संबंध केवल बिकाऊ और लुटेरा प्रवृत्तियों पर आधारित नहीं था। यह परस्पर विनियम था। ग्राहक और व्यापारी दोनों ही एक दूसरे से लाभान्वित होते थे। यह दोतरफा विकास था। इसमें बेचनेवाले और खरीदनेवाले दोनों लाभान्वित होते थे। बाजार के द्वारा व्यापार विकसित होता था और व्यापार के द्वारा समाज। अब बाजार के द्वारा केवल पूंजीवादी शक्तियाँ ही विकसित हो रही हैं और समाज गरीबी की गहरी खाई में धँसता जा रहा है। जैसे मछली को फँसाने के लिए काँटे पर आटा लगाया जाता है, वैसे ही बाजार से मुफ्त शब्द का महामंत्र की तरह अपना लिया है। मुफ्त का लालच देकर निर्धन जनता की भीड़ अपनी तरफ खींचकर, कब वह उनकी जेब काट लेता है, इसका पता ही नहीं चलता है।

मध्यकालीन काव्य में बाजार की सम्मोहक छवियाँ अंकित हैं। इस काव्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह बाजार समाज समृद्धि का संदेश देते हैं। यहाँ व्यापारी को लूटने की छूट नहीं है। चाहे वह व्यापारी नटनागर कृष्णा ही क्यों न हो, उसे साधरण सी ग्वाल–ग्वालिनें भी चेतावनी देने की शक्ति रखती हैं कि व्यापार किसी भी प्रकार की बेईमानी पर आधारित नहीं होना चाहिए। मध्यकालीन काव्य में बाजार अनावश्यक वस्तुओं से नहीं, जीवनोपयोगी वस्तुओं से सजते हैं। यहाँ नगर नागरियाँ ही तय करती हैं कि बाजार में अच्छी वस्तु किस दुकान पर मिलेगी ?विज्ञापन मौखिक एवं स्वानुभूति से उपजते हैं और ग्राह को प्रेरित करते हैं।

मध्यकालीन कृष्णभक्ति के काव्य–अनुशीलन से एक बात और स्पष्ट होती है कि कवियों ने अहीर, कृषक, कुम्हार आदि ग्रामीण व्यवसायियों की जिस विस्तार से चर्चा की है, उतने विस्तार से जौहरी सराफ, बजाज आदि नागरिक व्यवसायों की विस्तार से चर्चा नहीं की है, यद्यपि उस समय से व्यवसाय भी कम विकसित नहीं थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकालीन काव्य में बाजार कृषि घरेलू एवं कुटीर उत्पादों के विकास का माध्यम था। वह आम जनजीवन की सुविधा के लिए था, उसे लूटने के लिए वह सजीला स्वरूप धारण नहीं करता था।

मध्यकालीन काव्य में बाजार शब्द का व्यवहार कबीर और कबीर से पूर्ववर्ती काव्यों में भी बार–बार हुआ है। जायसी के सिंहलद्वीप के बाजार या हाट का उल्लेख अपने पद्मावत में किया है–'पुनि देखिय सिंघल के हाटा..।' गोस्वामी तुलसीदास ने रावण की नगरी में भी लगनेवाले हाट–बाजार से नगर की शोभा बढ़ाने का उल्लेख किया है–'चउहट्ट हट्ट सुबट्ट वीथी चारू पुर बहु विधि बना...।' कहते हुए तुलसी ने रावण की नगरी में भी बाजार को विकृत नहीं बताया था। कबीर तो लाठी लेकर बाजार में खड़े थे–'कबीरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।' यह लाठी बाजार पर नियंत्रण का प्रतीक है। यह बाजार के द्वारा गरीबों के घर जलाकर अपने विशाल मॉल जगमगाने की छूट नहीं देनेवाली आचार–संहिता की लाठी है। कबीर कहते हैं–'जो घर जारे आपनो।' अर्थात् जो अपना घर जलाता है, वह है बाजार। वह कहते हैं हमारे साथ चलो, इस नियंत्रक लाठी से बाजार को संयमित करने की जिम्मेदारी हमारी है, कवियों की, बुद्धिजीवियों की है।

अब कोई कबीर बाजार में लुकाठी लिए नहीं खड़ा है। लोग बाजार में अब अपने घर जला रहे हैं। कर्ज की आग में अपना संतोष झुलसा रहे हैं। अपना जीवन तबाह कर रहे हैं। यह बाजार हर साल अरबों–खरबों लोगों को निर्धनता की गहरी खाई में धकेलकर मुट्ठीभर लोगों को दुनिया का सबसे अमीर आदमी बनाए रखने का माध्यम बनता जा रहा ह। इसका कारण स्पष्ट है कि अब बाजार पर कोई नियंत्रण नहीं रहा। अब आप टी.वी. पर विज्ञापन देकर गंदे ताबीज, यंत्र–मंत्र से लेकर गर्भ निरोधक गोलियाँ भी लुभावने अंदाज में बेच सकते हैं। अब कोई कबीर, कोई बुद्धिजीवि हाथ में लुकाठी लिये कहीं नहीं खड़ा है। बाजार ने उनको भी खरीद लिया है, अब वे अपने 'रोड शो' का हिस्सा बनकर उनके लिए आकर्षक विज्ञापन तैयार करने में व्यस्त है, ताकि आप खुशी–खुशी उनकी लगाई आग में अपने झोंपड़े जला ले और उनके विराट मॉल, होटल और बाजार आपके घरों को बेदखल कर सकें।

आधुनिक काल के इस बीमार बाजार के विपरीत मध्यकालीन काव्य में बाजार के सम्मोहक चित्र सर्वाधिक कृष्ण भक्ति काव्य में उपलब्ध है। अष्टछाप के कवियों ने तो कृष्णलीला के गायन हेतु बाजार लीलाएँ भी रच डाली थीं, जिसके माध्यम से वह अपने समय के बाजार का सुंदर, आकर्षक किन्तु स्वस्थ स्वरूप दिखाने का उपक्रम करते थे। वह एक आदर्श बाजार का स्वरूप चित्रित करते थे, जो लूट, संस्कृति का विरोध करनेवाला और आम जनजीवन की सुविधाओं का पोषक था। उनका व्यापारी नटनागर कृष्ण था और ग्राहक थे–अहीर, ग्वालें और पुरवासी लोग। कृष्ण अत्याचारों को मिटाने

के लिए जन्मे थे, वह समाज में प्रेम की संस्कृति के साथ कर्म की संस्कृति को संयुक्त करना चाहते थे, जहाँ कर्म प्रेम से उपजे और समाज एक अविच्छिन्न प्रेम की डोर से बँधा हो। उनका दृष्टिकोण समाजोन्मुख था। यह व्यक्ति विशेष का विकास नहीं, समग्र समाज का विकास था, जो समृद्ध वाणिज्य को स्वस्थ वाणिज्य भी बनाना चाहता था। इस बाजार की पहली शर्त थी उचित मूल्य। व्यापारी अपने लाभ के लिए ग्राह से अनुचित मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी नहीं होता था। परमानंद दास ने नटनागर कृष्ण गोपियों से अपने दूध–दही का उचित मूल्य लेने पर जोर देते हैं, वह कहते हैं–'उचित मोल कहि या दधि को, लेहू मटुकिया सारी।'

अच्छी वस्तु को परखकर ग्राहक भी उचित मूल्य देना चाहता है। कृष्ण दही को चखकर उसी शुद्धता की जाँच करते हैं। महाकवि कुंभनदास ने एक पद में इसकी पुष्टि ही है–

'आज दधि देखों तेरौ चाखि।
कहे धौ मोल कितै बेचैगी, सत्ववचन मुख भाखि।।'

बाजार की विशेषता यह होती है कि वह लुभावने ढंग से ग्राहकों को आकर्षित करता है और जो वस्तु उसके लिए उपयोगी नहीं भी हो, तब भी उसे खरीदने के लिए तैयार कर लेता है। आज हमारे अनुपयोगी वस्तुओं से पटे जाते हैं; क्योंकि हम इस बात पर एकमत नहीं हैं कि अनावश्यक वस्तु हम नहीं खरीदेंगे। हम इसलिए खरीदते हैं; क्योंकि पड़ोसी पहले खरीद चुका है और हमारे नहीं खरीदने पर पड़ोसी के सामने हमारी शान घट जाएगी।

सूरदासजी ने इस प्रवृत्ति पर स्पष्ट संकेत दिया है, उनकी गोपियाँ उद्धव से मुक्ति का सौदा नहीं खरीदने पर एकमत हैं; क्योंकि उसकी उन्हें कोई आवश्यकता ही नहीं है। यहाँ गोपियों के माध्यम से सूरदासजी ने यह भी संकेत किया है कि यदि स्त्रियाँ अनावश्यक खरीददारी पर विचारभर कर लें, तो समाज अनावश्यक वस्तुओं से पटने से बच सकता है। बाजार स्त्रियों को ही अधिक उकसाता है; क्योंकि इसके आकर्षण का सबसे सुलभ शिकार स्त्रियाँ ही होती हैं। मुक्ति का सौदा लेने से इन्कार करनेवाली गोपियाँ समाज की जागरूक स्त्री शक्ति का प्रतीक है। उद्धव उन्हें वह चीज बेचना चाहता है, जिसकी उन्हें चाह या आवश्यकता नहीं है, परन्तु यदि एक भी स्त्री उद्धव के प्रलोभन में आ जाती, तो उसका सौदा ब्रज में बिक जाता। परन्तु ये जागरूक स्त्रियाँ थीं, इसलिए घर–घर शीश पर सौदा लिए घूमने पर भी उद्धव का मुक्ति सौदा वहाँ नहीं बिका–'धरे सीस घर घर डोलत हौं, एक मति सब भई सहेली।' यह एक मति होकर रहनेवाली सहेलियाँ तो प्रेम का सौदा करती हैं और उद्धव का उपहास करते हुए कहती हैं–

मुक्ति आनि मंदे मैं मैली।
समुझि सगुन लै चले न उधो, यह तुम पै सब पुँजी अकेली।
कै ले जाहू अनत ही बेचो...।

वह कहती है, इसे कहीं और बेचो। यह वस्तु यहाँ नहीं बिकनेवाली। ब्रजमंडल में महाकवियों द्वारा जो बाजार के यादगार वर्णन हैं, भले ही रस की दृष्टि से लीला व्यापार के निमित्त रचे गये हों; किन्तु इसके पीछे उनकी दृष्टि साफ है, यह रसिक ढंग से रचे गये लीलापद ही सही; किन्तु उनमें अपने युग के बाजारों का सौंदर्य, समृद्धि, व्यापारनीति, ग्राहक की जागरूक दृष्टि सभी कुछ समाहित हैं। सूरदासजी के कान्हा अपने भैया बलराम के साथ हटरी (हाट) में दुकान लगाकर बैठे हैं। उनकी दुकान में पिश्ता, दाख, बादाम, छुहारा, खुरमा, खाजा, मठरी आदि मेवा मिठाइयाँ हैं

सुरभी कान्ह जगाय खरिकहिं, बल मोहन बैठे हैं हटरी।
पिश्ता दाख बदाम छुहारा खुरमा खाझा गूझा मठरी।
घर घर तै नर नारि मुदित मन गोपी ग्वाला जुरे बहु हटरी।
टेरि टेरि जब देत सबनि को लै लै नाम बुलाई निकटरी।
देत असीस सकल बृजभामिनी, जसुमति देति हरषि बहु पटरी।।

बाजार में बृज नारियाँ एक दूसरे को बुलाकर नटनागर की दुकान पर ले जाती हैं। बाजार में ब्रज नारियों की भीड़ को रसिक दृष्टि से चित्रण न भी मानें तो यह सत्य आज भी किसी बड़े से बड़े खरीदारी के मॉल में देखा जा सकता है, जहाँ खरीदारी की शौकीन नारियों की संख्या नरों से अधिक दिखाई देती है। आज भी गली–गली में फेरे लगाकर वस्तुएँ बेचनेवालों की बिक्री ललनाओं की क्रयप्रियता के कारण कुछ कम नहीं होती।

ब्रजमंडल के इस हाट में व्यापारी कान्हा अपने ग्राहकों के साथ आत्मीयता का व्यवहार करते हैं। वह उन्हें नाम ले लेकर बुलाते हैं। ऐसे ही परमानंद दास की हाट भी बड़ी निराली है। वहाँ गिरिधर व्यापारी के वेश में हटरिया में बैठे हैं, मधु, मेवा,पकवान और मिठाई बेच रहे हैं। बृज वनिताएँ शृंगार कर आती हैं और मुस्कुराते हुए कन्हैया को चेतावनी देना भी नहीं भूलतीं कि सौदा ठीक से तौलना। कहीं कुछ कम न दे देना–

गिरधर हटरी भली बनाई।
दीपावली हीरा मनि राजत देखि हरख होतु अति माई
भाँति अनेक पकवान बनाए अति नौतन व्यंजन सुखदाई।
सुन्दर भूखन पहिरे सुंदरि–सौदा करन लाल सो आई
बैठे लाल हटरिया बेचत सुंदरि, सौदा लेन लाल सो आई।
सावधान ह्वै सौदा कीजो, जो दीजो तो तोल पुराई।
राखो चित चंचल नहिं कीजै, ग्वालिनी हँसि मुस्काई।

ऐसे ही वर्णन नंददास, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी सहित सभी प्रमुख अष्टछाप कवियों ने भी किया है। गोविंद स्वामी की हटरी तो रत्नों से जटित है, जहाँ मोतियों की झालरें टंगी हैं–

हटरी बैठे श्रीगोपाल।
रतन जटित की हटरी बनी है, मोतिन झाँलरि परम रसाल।

नंददासजी ने हाट में कृष्ण बलराम को नंद बाबा के साथ बैठे हुए बताया है–

दीप दान दै हटरी बैठे, नन्द बाबा के साथ।
नाना विधि मेवा मँगाई, बाँटता आपने हाथ।।

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण लीला के साथ जो बाजार लीला के पद रचे हैं, उनमें कृष्ण के व्यापारी स्वरूप का वर्णन करने के बहाने व्यापारी को ईश्वर अंश चित्रित किया है। यह ऐसा व्यापारी है, जो कभी कम नहीं देता। अनुचित मोल नहीं लेता। उसका सौदा पुष्टिकारक है। रत्नों से जड़े और मोतियों की झालरों से सजे हुए बाजार अपने युग की समृद्धि अपने युग की समृद्धि का बखान करते हैं। व्यापारी और ग्राहक के बीच विश्वास और प्रेम का रिश्ता है। तुलसीदास ने भी रामराज्य में ऐसे ही सुंदर बाजारों की झलक दिखाई है, जहाँ ग्राहक और व्यापारी के बीच ऐसा संबंध है कि वहाँ वस्तु बिना अन्य वस्तु दिये ही प्राप्त की जा सकती है। मानस के उत्तरकांड की पंक्तियाँ हैं–

बाजार रुचिर न बनई बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहु कुबेर तै।

ये वणिक बजाज है, जो अपनी प्रजा को शील का वस्त्र देते हैं, ये वणिक सर्राफ है, जो कुबेर की तरह अपनी सम्पदा बिना बदले में कुछ दाम लिये लुटाते हैं।

तुलसी के ये व्यापारी जो 'वस्तु बिनु गथ पाईए' अर्थात् बिना कुछ दिये वस्तुएँ देनेवाले हैं। वे बदले में कुछ नहीं लेते, वास्तव में प्रभु कृपा का प्रतिदान है। यह भक्त कवि की श्रद्धा है, किन्तु कृष्ण भक्ति के कवियों को अपने आराध्य से भी यह कहने में संकोच नहीं है कि–'सावधान ह्वै सौदा कीजो, जा दीजो तोल पुराई।' इसका अर्थ यह नहीं है कि कृष्णभक्त कवियों को अपने

गिरिधारी की ईमानदारी पर कोई संदेह है, वह तो कृष्ण के ब्याज अपने समय के वणिक वर्ग को नैतिकता का पाठ पढ़ाना चाहते हैं।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में व्यापार व्यवसाय ने केवल समृद्ध था, बल्कि बाजार भी आवश्यक नैतिकता का पालन करते थे। नीति केवल राज्य का दायित्व नहीं थी, वह नागरिक जनों की स्वतःस्फूर्त जागरूकता का हिस्सा भी थी। प्राचीन भारत में व्यापार के लिए जो बाजार थे, वह दस प्रकार के मार्गों पर विकसित थे। आशय यह है कि जलमार्ग, स्थलमार्ग एवं वायुमार्ग के माध्यम से प्राचीन भारत में बाजार विकसित हो चुके थे।

अष्टछाप के कवियों ने बाजार पर शासन द्वारा लगाए जानेवाले कर का भी उल्लेख किया है; किन्तु वहाँ कर के लिए दान शब्द का प्रयोग सूरदास आदि कवियों ने किया है। उन्होंने यह भी संकेत दिया है कि खान–पान की वस्तुएँ करमुक्त हुआ करती थीं। कंस द्वारा दूध–दही, माखन–घी आदि के विक्रय पर कर लगाने का विरोध ग्वालिनें करती हैं। कृष्ण राजा द्वारा नियुक्त कर वसूल अधिकारी बनकर दूध–दही, गोरस पर कर (दान) माँगते हैं और गोविन्द स्वामी की ग्वालिन कहती है–

कहो जू दान लेहौ कैसो।
दूध दही गोरस को दान कबहू न सुन्यौ कान।

कृष्ण और गोपियों के बीच इन संवादों में रसिक ढंग से खान–पान की वस्तुओं पर राजा द्वारा कर वसूलने की नीति का विरोध करते हुए इस नीति का प्रतिपादन किया गया है कि तत्कालीन समाज में बाजार और शासन के बीच नैतिक नियम था, जो पुरातन समय से चला आ रहा था कि खान–पान की वस्तुएँ कर मुक्त हों, सस्ती हों। इन दिनों बाजार की भाषा में मुफ्त शब्द एक लुभावना जाल रचता है। एक वस्तु पर दूसरी वस्तु मुफ्त का नारा देकर लालच के जाल में ग्राहक को फँसाया जाता है; किन्तु मध्यकालीन कवियों ने बाजार की इस प्रवृत्ति का भी विरोध किया है। संसार का यह अटल नियम है कि कोई वस्तु मुफ्त नहीं मिलती।

मध्यकालीन काव्य में बाजार लीला के इन सम्मोहक पदों में कवियों ने अपने समय के बाजार का जैसा आदर्शस्वरूप बखाना है, वह हमें प्रेरित करता है कि अनियंत्रित शक्तियों को हम अपने ऊपर हावी नहीं होने दें। हमारा बाजार हमारी जरूरतों को पूर्ति करनेवाला एक आदर्श माध्यम हो। वह समाज को निगल जानेवाली कोई शक्ति बनकर सामने आए तो उसे रोकने के लिए ''कोई कबीर हाथ में लुकाठी लिये खड़ा भी हो'', अन्यथा हम यह गाते हुए घर लौटेंगे कि 'प्यारे तेरे प्यार में लूट गये हम बाजार में।'

लघुकथा

एक अजपा जाप

रजनी शर्मा बस्तरिया
सोनिया कुंज, रायपुर
मो. 9301836811

सिंदूरी ने अलसुबह ही चंपई अँधेरे में किवाड़ खोल दिया। जाने सुबह की पुरवाई से उसका क्या नाता है, चाहे वह तड़के उठे या रात में किवाड़, खिड़कियाँ सभी धड़ाधड़ खोलने में तनिक भी देर नहीं लगती थी। नथुनों में ताजी हवा भरकर डोलती लटों को खोंच भिड़ गयी अपने कामों में।

अट्ठारह वर्ष की हो चली थी। पर अल्हड़पन जाने का नाम ही नहीं ले रहा था। 'बंदन' के साथ आज अमराई भी तो जाना है। आम की कैरी से आंचल जब भर जाता था, तब ही वह संतुष्ट होती थी। 'बंदन' सिंदूरी का बालसखा था। वह उसे सायंकाल में बिठाकर स्कूल तक पहुँचाया करता था। तभी तो वह चार जमात पढ़ पाई। फिरकी खरीदने के पैसे न होने पर वह घर पर पुराने कागजों से फिरकी तो मिनटों में ही तैयार कर देता था।

बालपन में ही बंदन का ब्याह दूसरे गाँव की रोली के साथ हो गया था। उसे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था। खेतों में पुआल के ढेर के पीछे बैठकर रेडियो सुनने में सिंदूरी को साक्षात् स्वर्ग का आनंद आता था। आज सिंदूरी का मन कुछ अनमना था। हवाएँ उसकी बात नहीं मान रही थी। केले के गाछ से फूल का गुच्छा ना जाने कैसे गिर गया था। बागड़ ने आज बैंगन के गाछ को कुतर दिया था। एक अजीब–सी चुप्पी सिंदूरी व बंदन के बीच कनखी कुतर रही थी। सिंदूरी तो थी ही मतिमंद।

बंदन शहर जा रहा था, उसकी आँखों में रत्नार रेशे तैर रहे थे। 'नेह के धवल ज्वार ने उसके हृदय में हिलोरें लेना शुरू कर दिया था।' मन उदास था। सिंदूरी के साथ छूटने को आया था और सिंदूरी को तो कोई फर्क ही नहीं पड़ता था। उल्टे फरइमाइशों की ढेर लगाती जा रही थी। आते वक्त नेलपॉलिश और प्लास्टिक के चप्पल जरूर लेते आना मेरे लिए। बंदन ने नजर नीची कर पूछा और कुछ नहीं बस इतना ही।

चोटियों से बँधे लाल फीते से खेलती, अपने में मगन सिंदूरी की ओर देख बंदन ने भीगे स्वर में पूछा–मुझे याद करोगी?नहीं...क्या जाप करेंगे तुम्हारे नाम का?बंदन बिना पिछले पलटे, नम आँखों से बाहर बग्गी पर बैठ जा चुका था।

जाने बंदन के जाने के बाद घर, गली, गाँव, पोखर, अमराई कैसे भाँय–भाँय करने लगे। अजीब–सा सूनापन कैसे पसरने लगा। सिंदूरी को हर काम में बंदन की उपस्थिति की लत जो लग चुकी थी। यह जानलेवा क्यों हुई जा रही है?दिन, सप्ताह, माह अब बरस बीते। जाने चौथी पास सिंदूरी कागज में क्या लिखती थी। उन लिखे कागजों की गोलियाँ बनाती और नदी में मछलियों को खिला आती।

अगले माह बंदन की 'पतुरिया' (दुल्हन) गाँव आयेगी। गौना होने जा रहा है। सिंदूरी का चेहरा आरक्त हो चला थ। कुँआरी गंध जो बंदन के जाने के बाद लजाती आई थी, वह ठिठक गई। निष्कम्प दीपशिखा–सी वह जड़ हो गयी। गाँव में आज संतन की टोली (साधुओं की मंडली) आई थी। बरगद नीचे दरबार सजा था। सिंदूरी के मन में अधिकार–लिप्सा के ज्वार–ज्वर के विक्षुब्ध सागर में कर्तव्याग्रह का प्रकाश स्तंभ जगमगा उठा। तमतोड़ तिमिर के घटाटोप अंधकार में निर्णय का उजाला पसर रहा था।

नई पतुरिया के साथ जब बंदन गाँव पहुँचा, आँखें कुछ खोज रही थीं। अंतर्मन सिसक रहा था। निगाहें कातर हो चली थी। अचानक किसी से पता चला सिंदूरी 'संतनमंडली के साथ हो चली। वह जब जा चुकी थी। किसी के हाथों से वह जीर्ण–शीर्ण कागज मिली। जाने कितने हजारों बार बंदन का नाम उस कागज पर लिखा था। मानो कोई अपने इष्ट का जाप करता हो। बंदन फफक पड़ा। कहती थी कि क्या तुम्हारे नाम का जाप करेंगे। 'एक अजपा जाप' न जाने किसने, किसके लिए, क्यों, कैसे लिखा..?

लघुशोध

आधुनिक काव्य की चिंताजनक स्थिति

साभार 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष'

गजानन माधव मुक्तिबोध

यद्यपि यह कहा जाता है कि तनाव का, खिंचाव का काल साहित्य–पूजन के लिए विशेष उपयुक्त रहा है। यह भी सत्य है कि पिछले कुछ सालों से हिन्दी–काव्य में ह्रास के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं। वह युग जिसका प्रतिनिधित्व मैथिली शरण गुप्त से लगाकर तो 'बच्चन' ने किया, अब समाप्त हुआ है। उनकी गूँजें, वही भावाच्छायाएँ, वही काव्य–उपादान, थोड़े–बहुत हेर–फेर के साथ पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाश होनेवाली कविताओं में मिल जाया करते हैं।

स्पष्ट है कि विगत साहित्यिक पीढ़ी का रोमैंटिक काव्य वर्तमान भारतीय जीवन के यथार्थ पर आधारित नहीं है। पिछले आठ–दस सालों से हमारी जिंदगी में कुछ ऐसी तबदीली हुई है और पिछले चार–पाँच सालों से उस तबदीली की रफ्तार इतनी तेज हो गयी है कि अलसायी छायाओं के उपवनों के उन्मन वातावरणों से आज हमारी आत्मा की परितृप्ति नहीं हो सकती। न उस टाइप के प्यार को लेकर, उसके अभिशापों और वरदानों तथा तत्संबंधी मूक साधनाओं, मरण–त्योहारों और अग्नि–शृंगारों के खिलौने से हमारी जिंदगी में भाव–सम्पन्नता आ सकती है, बशर्ते कि हमारा काव्य कवि–गोष्ठियों में उठते–बैठते रस बरसानेवाला काव्य न हो। आज हमारी जिंदगी का यथार्थ हमारे साहित्य में अपने पूछे अभिप्राय और आवेग के साथ उतरना चाह रहा है। खेद है कि हिंदी के प्रत्यक्ष काव्य–प्रयास कुछ महत्त्वपूर्ण अपवादों को छोड़कर उन्हीं पुरानी गूँजों को गुँजा रहे हैं, उसी बासी गंध को फैला रहे हैं, जिसका हमारे वर्तमान जीवन के यथार्थ से सामंजस्य नहीं हो पाता।

जबतक हमारे कविगण वर्तमान यथार्थ के अभिप्राय समझ नहीं सकेंगे और उन्हें समझकर उनका चित्रण नहीं कर सकेंगे, तबतक हमारे काव्य–साहित्य का उद्धार नहीं। 'दिनकर' कुरुक्षेत्र का पोथा भले ही लिख लें और उसमें राष्ट्रवाद के नाम पर बड़े शब्दों और ऊँची–ऊँची कल्पनाओं, फड़कते हुए वाक्यों और धड़कते हुए चित्रणों की रेल–पेलकर दिखायें, यह निश्चित है कि वही जिंदा रहेगा, जो वर्तमान यथार्थ के अभिप्रायों को समझ सके। यानी आज के प्रश्नों के संबंध में निश्चित भावात्मक और बौद्धिक 'आउटलुक' रख सके। 'दिनकर' के बारे में तो यह कहा जा सकता है कि वह अब पुराने खेमे का कवि हो गया है। किन्तु प्रधान प्रश्न तो उन कवियों का है, जो नवीन दृष्टिकोण का विरोध अथवा उपेक्षा करते हुए अपने प्रयासों के डिफेंस में इन कवियों के काव्य उदाहरणों को प्रस्तुत करते हैं। यह भी निश्चित है कि जो व्यक्ति वर्तमान यथार्थ की ओर दृष्टिपात नहीं करता, उससे अपनी काव्य–प्रेरणा और स्फूर्ति ग्रहण नहीं करता और उस नारे से प्रभावित होता है, जो भारतीय संस्कृति का नारा कहलाता है, तो वह व्यक्ति नवीन दृष्टिकोण (मॉडर्न आउटलुक), जनता का दृष्टिकोण भी ग्रहण नहीं कर सकता। आज भारतीय संस्कृति का नारा उनलोगों का है जो जनता के लिए क्रांतिकारी दृष्टिकोण को रूसी दृष्टिकोण कहकर लोगों का ध्यान, वर्तमान जन जीवन के यथार्थ के तकाजों से हटाते हुए, उन पुराने माया लोकों में अटकाना चाहते हैं, जहाँ अध्यात्म और विकास परस्पर चुरुबन– आलिंगनादि में व्यस्त है। यदि 'भारतीय संस्कृति का अर्थ जनता के अपने तकाजों ओर सवालों के आधार पर उसको सुसंस्कृत करना होता, तो वह नारा कभी गलत नहीं होता। किन्तु बात इससे बिल्कुल उलटी है। आज जब इन्सानियत तबाह हो रही है और कुछ तबके उसकी कीमत पर लखपति बनने की कोशिश कर रहे हैं, तब गरीब मध्यवर्ग के एक लेखक को 'भारतीय संस्कृति' का लुभावना नारा देकर उसे उनलोगों से हटाया जा रहा है, जो उसके अपने हैं। यानी जो उसी की तरह तबाह है और जिनकी हालत उससे भी बदतर है, जो अपनी जिंदगी के तकाजों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं। जहाँ भूखी जनता को अनुशासन में रहने की, भारतीय संस्कृति के अनुसरण की, दिन–रात नसीहत दी जाती हो और दूसरी ओर बड़े मजे से अपने सगे–संबंधियों को शोषण का मजा लेने दिया जाता हो, वहाँ 'भारतीय संस्कृति' के नाम पर एक बहुत बड़ा फ्राड चला करता है। अपने शत्रुओं के कैम्प के बुद्धिजीवियों की संघर्ष–आस्था को नष्ट करने के लिए विचारों की जालसाजी से भरे आंदोलनों के ब्रह्मास्त्र छोड़े जाते हैं। 'भारतीय संस्कृति' का नारा उसी का एक अंग है। गरीब मध्यवर्ग के लेखक को ऐसे सब नारों से मोर्चा लेना होगा, जो प्रतिक्रियावादियों के कैम्प में से निकलते हैं।

मुझसे कहा जाएगा कि यह राजनीति हुई, साहित्य नहीं रहा। किन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि जनता की राजनीति और जनोन्मुख साहित्य का स्रोत एक है। और वह है आज का यथार्थ। आज का यथार्थ कोई रहस्यवादी धारणा नहीं है, जिसको समझने के लिए इड़ा–पिंगला–सुषुम्ना नाड़ियों को तीव्र करना जरूरी हो। आज का यथार्थ जनता के जीवन का यथार्थ है, जो हम स्वयं रोजमर्रा जीते हैं। यदि हमारी काव्य–प्रेरणा वस्तुतः जनजीवन से उद्‌भुत हुई हो, तो जनजीवन की वर्तमान परिस्थितियाँ और उसके कष्टों का कारण भी हमारे अनुभूति–क्षेत्र का अंग होगा। अर्थात् इन्सानियत को तबाह करनेवाले रावणों, उनके सिपहसालारों और दोस्तों के जन–विरोधी षड्यंत्र भी हमारी अनुभूति के अंग होंगे यानी मात्र बौद्धि स्तर से उतरकर वे हमारे हृदय और आत्मा के समस्त अभिप्रायों में लीन हो जायेंगे। जब लीन होंगे तो स्थायी भाव होगा घृणा, घृणा और भयानक घृणा। तथा उनके नाश का संकल्प। जन–जीवन के अन्य चित्रों के साथ हमारे दूसरे भाव रहेंगे। देशभक्ति का अर्थ जनभक्ति होगा। अतएव राजनीति और साहित्य मात्र अभिव्यक्ति में भिन्न है। उसका मूल है आज का यथार्थ यानी जनजीवन का यथार्थ, उसके लक्ष्य, उसके अभिप्रेत, उसके संघर्ष!

हमारे समाज में कुछ ऐतिहासिक महाप्रक्रियाएँ चल रही हैं। किसी–न–किसी विकास अवस्था में दो परस्पर विरोधी तत्त्वों का संघर्ष चल रहा है। समाज के अंतस्तल में द्वंद्वों का यह संघर्ष ऐतिहासिक प्रक्रिया है। इस संघर्ष की तीव्रता दिन–ब–दिन गहरी होती जा रही है। संघर्ष व्यापक होता जा रहा है। जबतक हम अपनी बुद्धि, प्राण–मन, हृदय और आत्मा की समस्त अनुभूति तथा शक्ति को केन्द्रित करके, उसके द्वारा इस ऐतिहासिक जिंदा यथार्थ के आधार पर, जनजीवन के चित्र नहीं खड़े करते, तबतक गरीब किन्तु बुद्धिमान लेखक के जीवनकार्य का प्रथम अनुच्छेद भी समाप्त नहीं होता। स्पष्ट है कि यहाँ हम ऐसे ही लेखक की कल्पना कर रहे हैं, जो बड़ी तनख्वाहवाले उच्चवर्गीय साहित्यिकों के जमघट में अपनी साहित्यिक करामात का डेमॉन्स्ट्रेशन देने की इच्छा नहीं रखता; 'रेडियो कवि' नहीं बनना चाहता; आलस, निठल्लेपन, दोस्तीबाजी को साहित्यिक जीवन की अपनी विशेषता नहीं बनाना चाहता, जो साहित्य में कैरियारिस्ट नहीं है यानी अपनी रचना के मूल्य के आधार पर समाज से कीमत माँगता है, न कि सोशल कॉन्टेक्ट्स के जरिये मैन्यूवर करने का प्रकट–अप्रकट हिमायती है, जो अपनी बात की पाबंदी चाहता हो और वस्तुसत्य चाहे वह बौद्धिक और मानसिक ही क्यों न हो की परवाह ज्यादा करता है यानी वाचाल नहीं है और अपनी ही कल्पना की पतंग

नहीं उड़ाया करता है, जो अपने साहित्य–कर्म के प्रति और उसके जन–जीवन संबंधी मूल प्रेरणा स्रोतों के प्रति अगाध रूप से गंभीर और ईमानदार है या गंभीर और ईमानदार रहने की बेहद कोशिश करता है।

स्पष्ट है कि आज का साहित्यिक जितनी गंभीरता से अपने प्रत्येक प्रकार के उत्तरदायित्वों को सोचेगा और जीवन के समस्त रूपों के अध्ययन में रुचि और सूक्ष्मता प्रकट करेगा, उतनी ही उसकी साहित्यशक्ति तीव्र और प्रभावोत्पादक होगी। यदि वह अपने सबजेक्ट मैटर के यथार्थ में गंभीरता से प्रवेश करेगा, तो न सही एक दिन के एक प्रयास में, बल्कि धीरे–धीरे, कदम–ब–कदम वह पुरानी जड़ीभूत परतों को तोड़कर अपने नये साहित्य–संस्कारों को जन्म देगा और वह हौले–हौले उसका विकास करता हुआ आगे बढ़ता चला जाएगा। प्रयास के प्रथम चरण की दुरुहता, उलझी अभिव्यक्ति शैली तथा भावों का सामान्य स्तर, लेखक के स्वयं के अनुभवों के सहारे निखरकर हीरे और मोतियों–सी चमकती हुई भावच्छवियों और शब्द मालिकाओं का रूप धारण कर लेगा।

कहना न होगा कि विषय के यथार्थ के यथातथ्य भावात्मक चित्रण का कार्य एक वैसा ही घोर, अविरत और सुदीर्घ संघर्ष है, जैसे भारत का वर्तमान जीवन! जितना गहरा यह संघर्ष होगा, समझिये कि उतनी ही गहराई के साथ, अपने स्वयं के काव्य– उपादान लेकर, जनजीवन का वस्तु–सत्य अपने समस्त संदर्भों के साथ अपनी स्वयं की मौलिक अभिव्यक्ति लिए प्रकट होना चाह रहा है। लिखते वक्त हर ईमानदार लेखक का यह अनुभव है कि जो बात वह वस्तुतः कहना चाहता है यानी कि जो असल बात है (जिसे वह उसके संपूर्ण सौंदर्य के साथ प्रकट करने के लिए आतुर है), ठीक वही किन्हीं अजीब शक्तियों के षड्यंत्र से हाथ निकल जाती है और अन्य भाव, अन्य अभिव्यक्तियाँ बीच में दस्तन्दाजी–दखलन्दाजी करती हुई किसी दूसरी ओर बहा ले जाना चाहती हैं। असली बातरूपी रूपहली मछली उसको धोखा देते हुए, जाल में आती हुई–सी लगकर भी, इधर–उधर से फिसल जाती है और कभी–कभी तो उसे निराश हो जाना पड़ता है। कहना न होगा कि यह एक महान् और सुदीर्घ संघर्ष है और इस संघर्ष के पीछे है वैज्ञानिक ईमानदारी, जिसकी वैज्ञानिकता का हृदय मनुष्य–हृदय है यानी वह हृदय की अनुभूति की गहरी वैज्ञानिकता है। ऐसा संघर्षी लेखक झूठे रंगों, झूठी गूँजों और नकली बातों के फेर में नहीं पड़ता, न उसके सत्य का स्टैंडर्ड इतना नीचा होता है कि जो बात अनुभूत नहीं है, उसका वह दावा करे। उसकी अनुभूति की कल्पना के परे है और वैज्ञानिक आँखें हैं।

किन्तु हमारे लेखक–वे प्रगतिवादी ही क्यों न हों–इस प्रकार के संघर्ष से बचते हैं। इसलिए वे बात के नूर के स्थान पर भड़क रंग और फिसलती हुई जबान और बहता हुआ स्वर अधिक पसंद करते हैं। परिणामतः उनकी बात अधिक रोमैंटिक ढंग से की हो जाती है। शीघ्र इफैक्ट्स देने के लिए वे थोड़ा कहने की चतुरता का इस्तेमाल करते हुए कवि–कर्म से फारिग हो लेते हैं। यदि कोई यह कहे कि वे मॉडर्न आउटलुक, जन–जीवन का दृष्टिकोण रखते हुए भी ईमानदार नहीं हैं, तो इस गंभीर सत्य का एक पहलू यह भी है कि जो लेखक शीघ्र परिणाम के पीछे हाथ धोकर इस प्रकार पड़ा हुआ है, वह न अपने दृष्टिकोण के प्रति ईमानदार है, न अपने कर्तव्य के प्रति। ऐसे लेखक, यह सच है कि कुछ समय के लिए अपने न्याय–पथ पर कथनशैली के द्वारा साहित्य–जगत् में अपना स्थान बना लेते हैं, किन्तु उनका हो–हल्ला शोरगुल शीघ्र ही शान्त भी हो जाता है।

मैं यह पहले भी कह चुका हूँ कि जीवन के यथार्थ के प्रति अगर ईमानदारी रहे, तो वह स्वयं ही बोलता हुआ चला आता है। यानी दसूरे शब्दों में, अपने स्वयं के काव्य–उपकरण लेकर उतरता है। तो उसके मानी यह हुए कि घिसे हुए उपमा–चित्रों और प्रतीकों का पंजा आप–ही–आप छूट जाता है। और जीवन यथार्थ नये काव्य में अपनी जीवनशैली लेकर उतरता है। कहना न होगा कि छायावादी शैली वर्तमान कष्ट संघर्षमय जन–जीवन संबंधी चित्र–प्रयासों के लिए नितांत अनुपयुक्त और बिल्कुल बेकार हैं। फिर भी बड़ी ही प्रगतिशील भावधारा के (कभी–कभी हमारे प्रयासों की गहराई के अभाव में) उन्हीं प्रतीकों को लेकर चलाने के लिए असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। निश्चित और स्पष्ट है कि पुराने प्रतीकों के रंगदार काँच की खिड़कियों से बाहर की असलियतके विशाल दृश्य ठीक–ठीक दीख नहीं पाते। यानी यद्यपि यथार्थ खुद बोलता हुआ काव्य में उभरना चाहता है, तथापि हमारे साहित्य संबंधी असंगत संस्कार उसकी जबान की जगह उन्हीं घिसी हुई उपमाओं तथा शब्दों का शोरगुल खड़ा कर देते हैं। दूसरे शब्दों में, पूर्वागत काव्यशैली तथा भावशैली के घनीभूत प्रभाव के कारण नवीन यथार्थ भी अपनी भाषा को छोड़कर, अपना पैटर्न छोड़कर, पुराने पैटर्न में कैद हो जाता है। अतएव, नवीन लेखक के पास पुराने प्रभावों से जूझते हुए वर्तमान जन–यथार्थ के चित्र–प्रयासों के लिए उपयुक्त पैटर्नों की प्राप्ति का भी महत्त्वपूर्ण कार्य है। संघर्षी लेखक को नये यथार्थ की किसी पूर्वागत परंपरा के अभाव के कारण, कभी–कभी अपने पैटर्नों के प्रति और अपने प्रति उत्पन्न अविश्वास के प्रति घोर संघर्ष करना पड़ता है। नवीन यथार्थ के पैटर्नों को वह सामाजिक मान्यता नहीं मिल पायी है।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि संघर्षी लेखक के विरुद्ध सारी स्थिति–परिस्थितियाँ आज काम कर रही हैं। चूँकि आज उसे अपना रास्ता बनाना है यानी नये यथार्थ का समस्त वातावरण शब्दों में अंकित करना है, उनकी अपनी भाषा और प्रतीकों के जरिये, साथ–ही–साथ चूँकि विद्वानों की दकियानूसी से लगाकर संपादकों की निबुद्धिता उसके रास्ते में पहाड़ और खाइयों का काम करती है, जो कि उसकी आवाज को पाठकों के पास पहुँचने नहीं देती और चूँकि लेखक स्वयं (यद्यपि पुरानों से बहुत आगे) अपनी मंजिल के बहुत पीछे होने से उसका ध्यान अपने साहित्य– कर्म के कठोर कार्यक्रमों में ही लगा हुआ है और चूँकि उसे वस्तुतः जन जीवन के विभिन्न प्रधान रूपों और प्रधान भावों को अपने भाव विलास के क्षेत्र में आत्मसात करने की सुदीर्घ प्रक्रिया में लीन होना है–अतएव, वैज्ञानिक ईमानदारी रखनेवाले अनुभूतिप्रवण साहित्यकार को समस्त प्रवृत्तियाँ आज कठोर संघर्ष कर रही है। इन घनघोर आस्था और अंततः अपनी विजय में उतनी ही घनघोर निष्ठा आज के जनवादी लेखक की पतवार है, उसका संबल है। यह उसका अहंकार नहीं कि साहित्यिक की फूहड़ सोसाइटी उसे अरुचिकर प्रतीत होती है।

सबसे बड़ी बात यह है कि जिस प्रकार एक नेता या केवल जनता को नेतृत्व प्रदान करता है, वरन् वह उससे सीख और नसीहत भी ग्रहण करता है, उसी प्रकार नये लेखक का सबसे बड़ा शिक्षक, सबसे बड़ा गुरु और सबसे बड़ा वैज्ञानिक स्वयं जनजीवन और उसके दृश्य हैं। हमें वास्तविक जनजीवन में अनेक महान् व्यक्ति देखने को मिलते हैं, महान् प्रतिभाएँ दृष्टिगत होती हैं और महान् संघर्ष और त्याग के विशाल मानवीय दृश्य नजर में आते हैं, जिनके सामने हमारी तथाकथित साहित्यिक सोसाइटी के नेता बौने, बुजदिल, निर्बुद्धि मालूम होते हैं। कहना न होगा कि चूँकि लेखक इस जनजीवन का ही एक भाग, एक अंश है, इसलिए वह इस जनजीवन के आदेशों का ही पालन करेगा। उसका खुदा और पैगम्बर उसी जनजीवन में बसता है और वही जनजीवन उसका कुरान और मार्क्सिज्म है। तात्पर्य यह है कि हमारा लेखक एक नये ढाँचे का व्यक्ति है। जो कवि–सम्मेलनों और पत्र–पत्रिकाओं के ग्रामोफोन से अलग अपनी वीणा पर जिंदगी के सप्तस्वर छेड़ता है। इस संघर्ष के ऐतिहासिक कार्य और उन स्वरों के आगे वह किसी की परवाह नहीं करता, चाहे वह कितना ही बड़ा तीसमार खाँ क्यों न हो।

यहाँ 'जनजीवन' इस शब्द को भी स्पष्ट कर देना चाहिए। चूँकि फ्राड की गुंजाइश सब जगह है, इसलिए यहाँ भी है। जब हम रास्ते पर घूमते हैं तो करुणाजनक दृश्य दिखाई देते हैं क्या हम जनजीवन को उतना ही निःशक्त

और दयनीय समझें। हरगिज नहीं। हमारे कतिपय साथी उस दयनीता के चीखते हुए चित्रों और उसके विद्रूप रंगों को ही एकमात्र जनजीवन समझते हैं। यह गलत है। वह जनजीवन का एक अल्पांश है। उस अल्पांश से समस्त जनजीवन पर निर्णय नहीं दिये जा सकते। जनजीवन में करुणा है, पर विद्रूप दयनीयता नहीं, उसमें कठोर संघर्ष शक्ति है, त्याग की भावना है, विवेक है, कर्मण्यता है; उसी प्रकार युगानुयुग शोषण के कारण, अलावा गरीबी के, उसमें अज्ञान है तो ज्ञान भी है, कुसंस्कार है तो क्रान्ति–भावना भी है। सारांश में, जनजीवन की आत्मशक्ति संघर्षशक्ति के ऐतिहासिक क्रांतिकारी अभिप्राय है। उनके दुख, कष्ट, वेदना में एक रफ्तार है–वह रफ्तार जो जमाने की रग में गुस्सैल खून की तरह बहती है। वह कष्ट–वेदना एक शमशीर है, जो जन–शत्रुओं को खत्म कर देगी। वह कष्ट–वेदना जनजीवन के पैरों में मोच नहीं है। सारांश यह है कि जनजीवन के इन मौलिक तत्त्वों के आधार पर ही मानवीय करुणा, संघर्ष आदि के दृश्य खड़े किये जाने चाहिए।

यहाँ हम एक दूसरे खतरे की ओर भी इशारा कर देना चाहते हैं। वह यह कि जनजीवन के इन क्रांतिकारी अभिप्रायों को वास्तविक जनजीवन के दृश्य से हटाकर उनके सामान्यीकरण (जेनेरलाइजेशन) की कविता हिन्दी में होती है। जैसे धरती का प्रतीक लेकर जनजीवन की प्रशस्ति की रचनाएँ अथवा किसान मजदूरों की क्रांतिकारी हैसियत के पुरजोश तराने। विलासक ऐसी कविताएँ जरूरी हैं, किन्तु चूँकि ऐसी कविताएँ करना अपेक्षाकृत आसान है और चूँकि इस ढर्रे पर अनेक कविताएँ और भी लिखी जा सकती हैं और अपनी लिखास (लिखने की प्यास) पूरी की जा सकती है, इसलिए कौन वास्तविक जनजीवन के दृश्यों मूर्ति खड़ा करे! जैसे कोई गरीब स्त्री अपने बच्चे को सुलाते हुए लोरी गा रही है और तब उसकी आँखों में जीवन के दृश्य तैर रहे हैं कौन इस थीम को अंकित करे! इसमें तकलीफ होती है। एक वृद्ध पिता अपने नाती को जीवन–संघर्ष में वफादार रहने की बात कहता है। कौन इसका चित्रण करे! तकलीफ होती है। एक माता अपने क्रांतिकारी पुत्र की आँखों में भावी नवजीवन के सपनों की मूर्ति की तस्वीर देखती हुई पुलकित हो जाती है। कौन उसकी पुलक का अंकन करे! तकलीफ होती है। एक मित्र अपने दूसरे मित्र की भयानक तकलीफ से पीड़ित होकर वर्तमान जिंदगी की तस्वीर अपनी आँखों में बसाता है, कौन इसका चित्रण करे! तकलीफ होती है? गोया आसानी से हो जाय तो ठीक, नहीं तो ऐसी–तैसी!

मराठी, उर्दू और हिन्दी की कविता का मिलान यहाँ ठीक होगा। मराठी में जीवन–दृश्यों के क्षणों का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। उर्दू में क्रांति का तारुण्य की बेसब्र सम्मिलित मनोभावनाओं का और हिन्दी में वर्मान जीवन की कटुता का जोश भरे तरानों और क्रांति के सामान्यीकरण का बाहुल्य है। हमें जीवन के समस्त दृश्यों का चित्रण करना जरूरी है। इसलिए हमारे प्रयास व्यापक होना चाहिए। विशिष्ट (पार्टिकुलर) जनजीवन दृश्यों में जनजीवन के अभिप्रायों के सामान्यीकरण (जेनेरल) की गूँज जरूरी है। इन दोनों के मिश्रण से ही पाठक को अपने जीवनभाव और अपने अभिप्राय समझ में आयेंगे। और इस प्रकार उसके हृदय में कठोर यथार्थ और हिम्मत, शक्ति और मस्ती का योग होगा। विशिष्ट को छोड़ मात्र सामान्य में वह बल नहीं आ पाता, जो जिंदगी में चट्टानी हिम्मत, भुजाओं की फौलादी ताकत, दिल में इंसानियत का लहराता समुंदर ला सके।

इस प्रकार जनजीवन का ज्ञान, जीवन का अभिप्राय और उसकी आत्मशक्ति का मेल, जबतक हम अपने सुखदुख में न कर केवल ऊपरी अमूर्त निराकार वैचारिक स्तर पर ही उसे घुमाते रहेंगे, तो सामान्य विशिष्ट का स्वर नहीं हो पायेगा। काव्य में विशिष्ट के साथ–साथ सामान्य रहे तो जीवन–दृश्य और उनका आघात ठीक–ठीक होगा। हमारे रात–दिन चलते हुए संघर्ष के दृश्यों के अभिप्राय ही तो जनजीवन के अभिप्राय जनजीवन के प्रतीक हैं। इस लक्ष्य की पूर्ति अपने आपमें एक ऐसा आकर्षक और सम्मोहक कार्य है, जिसके लिए जिंदगी के तमाम दूसरे व्यक्तिगत मोहों को ठुकराया जा सकता है और उसके माध्यम द्वारा जीवन की सफलता और अपने काव्य का आनंद प्राप्त किया जा सकता है।

(1951 ई0 एवं 1971 में सबेरा संकेत में भी प्रकाशित)

उत्तिमा केशरी
दुर्गाबाड़ी, पूर्णियाँ
06454242776

चित्रलेखा

चित्रलेखा
मेरी अंतरंग सखी
चाहे जिसने भी
रखा होगा यह नाम
नामकरण की सार्थकता करने की
पुरजोर कोशिश ने
मुझे ला खड़ा किया
भगवती चरण वर्मा की
चित्रलेखा के पास
सच चित्रलेखा
तुम भी परिपक्व
और
बुद्धिमति हो..
वर्माजी की चित्रलेखा की तरह
योग और साधना की सीढ़ियाँ
चढ़ते–चढ़ते
तुमने भी पा लिया–
प्रेम की पूर्णता को
मैं तुम्हारे स्वयं के निर्णय
से किया गया–
इस परिणय बंधन से खुश हूँ
देखो कैसे तुम्हारे हृदय में
भर आई है–यौवन की उमंगे
आँखों में मादकता की लाली
प्रेम के प्रांगण में, अपराध नहीं होता
चित्रलेखा
क्योंकि
प्रेम एक त्याग है, पूजा है, अनुराग है
और
है श्रद्धा भी
तुम बँधी रहो सदा,
पति के आलिंगन पाश में
ठीक, कुमार गिरि की तरह।

आलेख

राष्ट्रीय चेतना में साहित्यकारों का योगदान

शंकरलाल माहेश्वरी
पूर्व जिला शिक्षा पदाधिकारी, आगूँचा,
भीलवाड़ा (राजस्थान) 9413781610

इक्कीसवीं सदी का जीवन वैश्वीकरण, साइवर क्राइम, मुक्त बाजार प्रणाली, बाजारवाद, उपभोक्ता प्रवृत्ति, साम्प्रदायिक संकीर्णता, राजनैतिक विकृतियों, भ्रष्टाचार, अनाचार, उग्रवाद, आतंकवाद, असुरक्षा, मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन, राष्ट्रीय चरित्र का अभाव, धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाओं में गिरावट, अनैतिकता को बढ़ावा, मूल्यहीन शिक्षा का दुष्प्रभाव, सांस्कृतिक विद्रूपता, पर्यावरण प्रदूषण, भौतिकवाद आदि मरीची भावों के बीच विकसित हो रहा है।–लक्ष्मीनारायण रंगा

समाज की ऐसी विकृतियों की अवस्था में इस प्रकार के साहित्य सृजन की आवश्यकता है, जो नई चेतना जगा सके। मानव मन में संवेदनाओं का समावेश कर पथराए मानव मन को पिघलाकर युगानुकूल मानव की संरचना कर सके। आज मनुष्य मात्र को आत्मचिंतन की आवश्यकता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जो साहित्य लोकतंत्र के अधिकारों और कर्तव्यों की महत्ता का प्रतिपादन कर मानवीय व नैतिक गुणों के उत्थान हेतु मानव मस्तिष्क को झकझोर दे, उसे नया कुछ करने की प्रेरणा प्रदान करे। साम्प्रदायिक सद्भाव की दिशा में आगे कदम बढ़ा सके। भटके हुए युवाओं को नई राह दिखा सके। पाश्चात्य विचारों से मुक्ति प्रदान कर भारत माँ के प्राचीन गौरव को लौटा सके। संचार साधनों का उत्तरदायित्व गहराईसे समझकर राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव, अपराधीकरण पर नियंत्रण तथा लोक हितकारी योजनाओं से संलग्न होकर राष्ट्र व समाज को नई दिशा दे सके। साहित्य साधक अपने रचनात्मक कौशल का परिचय देते हुए ऐसे ज्योतिस्तंभ का कार्य निरूपण करे, जो व्यक्ति को अंधकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होने में संबल प्रदान कर सके।

साहित्यकार को ऐसे समर्थ और ऊर्जावान रचना शिल्पी के रूप में प्रस्तुत होना चाहिए, जो देश की दशा–दिशा को गंभीर आकलन कर उसे प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए दिशा बोध प्रदान कर सके। समाज और राष्ट्र को एक नवीनतम आयाम देने का समय आ गया है। साहित्यकार अपने शिल्प द्वारा समर्पित भाव से समाज को सुसंगठित और संस्कारित करने में अपनी भूमिका का निर्वहन करें। आज वैचारिक क्रांति की आवश्यकता है। जब जब भी समाज में मूर्च्छा उत्पन्न हुई, नकारात्मक सोच का प्राधान्य हुआ, बदलती परिस्थितियों में देशवासी बदलाव नहीं ला सका, समय के साथ कदम नहीं मिला सका, तो साहित्यकार की सीख बड़ी सार्थक सिद्ध हुई है।

प्राचीन काल में राजा–महाराजाओं को सुशासन संचालन हेतु बिगड़े आदर्शवान बनाने हेतु मित्र लाभ, हितोपदेश, नीति कथाएँ, जातक कथाएँ, पंचतंत्र की कहानियाँ, चाणक्य नीति, नीति शतक, विदुर नीति आदि ग्रंथों का तत्कालीन साहित्य साध्कों ने समाजगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए साहित्य का सृजन किया था, जिससे सोयी जनता में जागरण उत्पन्न हुआ और एक सामयिक परिवर्तन की लहर दृष्टिगत हुई। सत्साहित्य द्वारा विचारवान व्यक्तियों का जन्म होता है, जो रूढ़ियों के विरुद्ध मानसिकता दिखाते हुए समाज में व्याप्त न्यूनताओं को उखाड़ फेंकने में सक्षम होता है।

यदि आज के उदीयमान साहित्यकारों ने अपने प्रेरक साहित्य सृजन की दिशा में कदम नहीं बढ़ाए तो सामाजिक समरसता, राष्ट्रप्रेम, श्रमनिष्ठा, पारिवारिक सामंजस्य, वैचारिक परिवर्तन और सुसंस्कारों के सृजन से कोसों दूर रह जायेंगे। यदि सही समय पर सही मार्गदर्शन व दिशाबोध रचना शिल्पियों द्वारा नहीं मिला, तो बहुत पिछड़ जायेंगे और पीछे रहकर दौड़कर भी मंजिल प्राप्त नहीं कर पायेंगे। अतः साहित्यकारों को त्वरित गति से समय के साथ सही दिशा में अपनी रफ्तार तेज करनी चाहिए।

'विचारवान व्यक्ति वह होता है, जिसने मस्तिष्क को इस तरह विकसित कर लिया है कि वह जो चाहता है, उसे हासिल कर सकता है।'–नेपोलियन

ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, दुष्कर्म, बेईमानी, भ्रष्टाचार, जीवन मूल्यों में गिरावट व्यक्ति के भटकाव के कारण है। उसे सही मार्ग का अनुसरण करने के लिए साहित्य उपलब्ध नहीं हुआ, जिसके पारायण से वह स्वयं को सद्मार्ग पर अग्रसर कर सके। आज तोता–मैना और लैला–मजनूं की कहानियाँ सार्थक नहीं है, अब जीवन में आमूलचूल परिवर्तन लानेवाला चोटिला साहित्य चाहिए। सत्साहित्य के पठन द्वारा मानव मन की कलुषित भावनाओं का दमन हो सकता है तथा उत्पीड़न व अनाचारों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

'जिस प्रकार प्रेम आलसी निकम्मे मनुष्यों को सुधार देता है, उसी प्रकार सत्साहित्य जीवन में महान् परिवर्तन कर देता है। चरित्रगत दुर्बलताओं को इस प्रकार दूर कर देता है, मानो किसी दैवी शक्ति ने जीवन में प्रवेश किया हो। व्यक्ति मन के अंदर की फूहड़ता और अव्यवस्थाओं तथा कुटिलताओं को हराकर सुव्यवस्था और सद्भावना को स्थापित कर देता है, जिससे अकर्मण्य मनुष्य भी कर्मठ बन जाता है और भटका हुआ प्राणी सन्मार्ग पर अग्रसर होने लगता है।'–रास बिहारी

शब्द शिल्पी द्वारा सृजित साहित्य विश्व की मूल्यवान धरोहर होता है। साहित्य शब्द का तात्पर्य सत्य का अनुसरण करता हुआ जन–जन के कल्याण के लिए साहित्य सृजन हो। साहित्य के द्वारा ही रचनाकार अपना संदेश जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास करता है। शांत मस्तिष्क करुणा हृदय का आमुख है और उसका परिणाम सत्कर्म है। मनुष्य को सत्य एवं आचरण में धर्मजीवी होना चाहिए। अध्यात्म–अमृत का पान कर मानव लोकोपकारी बनता है। वह सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् का पोषक होता है। उसमें जन–कल्याण की भावनाओं का उद्गम होता है। व्यक्ति सभ्य और सुसंस्कृत बनता है। करुणा, दया, मैत्री, उदारता, त्याग, सहिष्णुता, सहयोग, श्रम और कल्याण की भावना से परिपूर्ण होकर समाजसेवा में संलग्न हो जाता है। अतः ऐसे साहित्य को विकसित किया जाए, जो मनुष्य की भावनाओं को आलोड़ित कर सके। आज कथनी और करनी में एकरूपता नहीं होने से सिद्धांत और आचरण में बड़ी खाई उत्पन्न हो गई है। हम ज्ञानी बन गये, जानकारियाँ बढ़ गयीं, किन्तु सद्गुणों का विकास नहीं हो पाया। विश्वबंधुत्व की भावना तिरोहित हो गई, अतः राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति सजगता पैदा करना साहित्यकार का दायित्व है।

मानवमात्र में सत्य के प्रति निष्ठा और असत्य के प्रति तिरस्कार के भाव में जागृत हो सके, सर्वे भवन्तु सुखिनः के सूत्र का अनुसरण कर सकें। अतिथि देवो भवः की भावना बलवती हो सके, भौतिकवादी सोच से छुटकारा मिले, संस्कार, सद्भाव, आचार, व्यवहार, सहृदयता, सहयोग और सहानुभूति आदि गुणों का अभाव हो गया है। आज का जन प्रतिनिधि भटक गया है, दंभ और अहंकार से परिपूर्ण है, उसका वाणी–संयम नष्ट हो गया है। राष्ट्र के प्रति समर्पण भाव समाप्त हो गया है। नेतृत्व की क्षमता नहीं है। वह स्वार्थी और शोषक बन गया है। आज सूचनातंत्र भी निर्बल हो गया है, प्रशासन पंगु हो गया है। भ्रष्टाचार शिष्टाचार बन गया है तथा साम्प्रदायिकता देश के लिए अभिशाप बन गई है। जब समाज और राष्ट्र अपने मार्ग से भटकने लगता है, तो साहित्यकार की ललकार ही उसे गलत मार्ग को छोड़ सही मार्ग का अनुसरण करने में सहयोगी होती हैं। एक ऐसा भी समय था, जब तत्कालीन राजस्थान के

राजा–महाराजाओं में प्राण फूँकने वाले उन चारण कवियों को नहीं भूलाया जा सकता, जिन्होंने अपन ओजस्वी भाषा व तेजोमय वाणी से उन्हें राजमहलों से बाहर निकाल रणभूमि में तलवार थमाने का कार्य किया। यह चारण साहित्य का ज्वलंत उदाहरण है। चारण कवियों ने आश्रयदाताओं के लिए कीर्ति, युद्धकला, गर्वोक्तियाँ तथा वीरतापूर्ण कार्यकलापों का चित्रण किया है। वह चारण साहित्य उस समय की ज्वलंब समस्याओं के समाहार हेतु उपयोगी सिद्ध हुआ। वह पूरा कार्यकाल डॉ. रामकुमार वर्मा और डॉ. ग्रियर्सन ने आदिकाल को 'चारणकाल' के नाम से संबोधित किया है। चंदरबरदाई का नाम आज भी जन–जन के मन को आंदोलित करता है। वर्तमान काल में मुंशी प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास आदि के साहित्य ने भी पाठक को उत्प्रेरित किया है। शिवाजी महाराज के समय में साहित्य–सेवा की दृष्टि से कवि भूषण का विशेष योगदान रहा है।

उपन्यास सम्राट् प्रेमचंद के उपन्यास वस्तुतः गाँधीवादी युग की झलक प्रस्तुत करते हैं, उनका कोई भी पात्र संघर्ष से विचलित नहीं होता और उनमें वे समाज की विकृतियों पर प्रहार करते रहे हैं उनका साहित्य डूबते हुए को संबल प्रदान करनेवाला है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि संत कवियों ने अपनी जीवन शैली और साधना से हताश हिन्दू समाज को आलंबन प्रदान किया था। साहित्य समाज की प्रगति की आधारशिला प्रस्तुत करता है। साहित्य मानव जीवन को परिष्कृत कर उसे सही दिशा में गतिमान करता है। सशक्त और सजग साहित्य समाज का पथ–प्रदर्शक होता है। देश और समाज के निर्माण में साहित्यकार का बहुविध तथा असीमित सहयोग होता है। वे परंपरा के वटवृक्ष का सहारा लेकर प्रगति के फूल बिखेरते हुए समाज व राष्ट्र का मार्ग प्रशस्त करता है। साहित्य सूर्य किरणों की भाँति समाज में चेतना का संचार करता है। ज्ञान के अंधकार को दूर कर समाज को आलोकित करता है। साहित्य ही राष्ट्र की सांस्कृतिक गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखता है। साहित्यकार का दायित्व है कि यह ऐसे साहित्य का सृजन करे, जिससे नागरिक अपने अधिकार व कर्तव्य तथा न्यायिक व्यवस्था से परिचित होकर जागरुक बन सके।

जब देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठापित हुआ, उस समय जनता अत्याचारों से त्रस्त थे। देव मंदिरों को गिराना, महापुरुषों को अपमानित करना और साम्प्रदायिकता फैलाना आदि कुकृत्यों से जन जीवन दुखी था। उस समय हमारे संत कवियों ने साहित्य सृजन से समाज को एक नई दिशा प्रदान की थी। संत कबीर ने तो खंडित समाज को एक सूत्र में बाँधने का अथक परिश्रम किया तथा भावात्मक एकता स्थापित करने में सफल रहे। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रादुर्भाव से आधुनिक भावधारा का विकास हुआ। सामयिक साहित्य में सामाजिक कुरीतियों का उद्घाटन, अंग्रेजों के विरुद्ध जनमत निर्माण तथा राष्ट्रभक्ति, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, शिक्षा का प्रचार–प्रसार आदि के साथ राष्ट्रीय चेतना का उदय। इस समय के साहित्यकारों ने जनमानस में राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया और अपने साहित्य धर्म का निर्वाह किया।

आज सूचना क्रांति का युग है। दूरदर्शन व इंटरनेट के माध्यम से व श्रेष्ठ कथा–कहानियों से परिपूर्ण आलेखों से जन शिक्षण प्राप्त हो सकता है। अतः कथाकारों को देश हित में ऐसी चित्र–कथाएँ तैयार करनी चाहिए, जो उपयोगी व प्रेरक हों। विशेषतः शिक्षण संस्थाओं में जहाँ नई पीढ़ी की पौध तैयार हो रही है, वहाँ यदि प्रेरणादायी और जीवनमूल्यों की उत्प्रेरक पुस्तकों का उपयोग हो, तो भावी नागरिक का बौद्धिक स्तर विकसित होगा। देश का विकास भी तभी संभव है, जब प्रत्येक नागरिक सुशिक्षित हो सके।

'न पढ़नेवालों से वे श्रेष्ठ हैं, जो पढ़ते हैं। पढ़नेवालों से वे श्रेष्ठ हैं, जो पढ़े हुए का स्मरण रखते हैं। स्मरण रखनेवालों से वे श्रेष्ठ हैं, जो पढ़े हुए का अभिप्राय समझते हैं और उनसे भी वे श्रेष्ठ हैं, जो पढ़े हुए के अनुसार आचरण करते हैं।' –मनुस्मृति

एक साहित्यकार के द्वारा ऐसी कृति का निर्माण हो, जिससे पठित सामग्री का अनुसरण कर आचरण सुधार के लिए उत्प्रेरित हो जाए। साहित्य की विविध विधाओं में निबंध, कविता, नाटक, एकांकी, बोधकथा, संवाद, रेखाचित्र, व्यंग्य लेख, उपन्यास तथा क्षणिकाएँ विशेष रूप से प्रचारित हैं। अतः सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप ही विषय वस्तु का समावेश विभिन्न विधाओं में प्रस्तुत किया जाए। कवि सम्मेलनों का भी सामाजिकों के लिए विशेष महत्व है, अतः कवि अपनी प्रेरणादायी कविताओं के माध्यम से जागरण उत्पन्न कर सके, ऐसा उन्हें सुनिश्चित करना चाहिए।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आतंकवाद, नक्सलवाद, माओवाद, सीमाओं का अतिक्रमण, पर्यावरण प्रदूषण, मानवाधिकारों का क्षरण, दुष्कर्म, अनाचार, घरेलू हिंसा, सांस्कृतिक प्रदूषण, जनसंख्या विस्तार, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, हत्या, लूटपाट आदि ज्वलंत समस्याएँ समाज में व्याप्त हैं। इसके साथ ही सामाजिक रूढ़ियाँ भी जन जीवन को प्रभावित कर रही हैं। जिनमें दहेजप्रथा, मृत्युभोज, बालविवाह, शादी समारोह में दिखावा आदि कुप्रथाओं से जन जीवन त्रस्त है। अतः इन सबपर नियंत्रण भी आवश्यक है। 'साहित्यकार को सकारात्मक सोच के साथ अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रबल इच्छा शक्ति, अथक परिश्रम, पारदर्शिता तथा सकारात्मक सोच के साथ अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करना चाहिए तभी समाज का हित होगा।

वर्तमान में समूचा देश आतंकी गतिविधियों से पीड़ित है। पुलवामा का आतंकी हमला इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पूर्व के भी देश पर कई आतंकी हमले हो चुके हैं और असहाय लोगों को मौत का मुँह देखना पड़ा है। ऐसी विषम परिस्थिति में हमारे देश के सैनिकों ने दुश्मनों को मुँहतोड़ जवाब देकर जिस तरह देश के नागरिकों को सुरक्षा प्रदान की है, वह स्तुत्य है। आज देश पर जहाँ बाहरी आतंकियों का संकट मंडरा रहा है, वहीं आंतरिक उग्रवादी, नक्सलवादी, पत्थरबाज और माओवादी के द्वारा सुरक्षा को भी खतरा पैदा हो गया है। ऐसी विषम परिस्थिति में साहित्यकारों का विशेष दायित्व है कि हमारे वीर जवानों का मनोबल बढ़ाये और सेना दुगुने उत्साह के साथ दुश्मनों से मुकाबला कर सके, ऐसी साहित्य सामग्री का सृजन करना चाहिए तथा प्रत्येक नागरिक में राष्ट्रीय भावना को दृढ़ता प्रदान करने के साथ ही वीर जवानों को संबल प्रदान कर सकें।

जिन वीर सैनिकों ने अपने प्राणों की आहूति देकर राष्ट्र–रक्षा का महत्वपूर्ण कार्य किया है, उन शहीद परिवारों की सुरक्षा, रोजगार, चिकित्सा, शिक्षा तथा जीवनयापन में देशवासियों का सहज सुलभ योगदान मिल सके, ऐसी प्रेरणा साहित्यामृत से प्राप्त हो, साथ ही तात्कालिक ज्वलंत समस्याओं के निराकरण में देशवासी तत्परता व समर्पण भाव से योगदान देने के लिए कटिबद्ध हो सके। गुरु नानक का कथन है कि 'शब्द के संवाद से शिव, ब्रह्म और इन्द्र को शक्ति प्राप्त हो सकती है, व्यक्ति का पिछला जीवन चाहे जैसा भी रहा हो, शब्द संवाद द्वारा वह वांछित दिशा में उन्मुख हो सकता है।'

यदि साहित्यकार सजगतापूर्वक निष्पक्ष भाव से समसामयिक अवस्थाओं और विसंगतियों का पर्याप्त आकलन कर अपनी लेखनी उठाने का संकल्प संजोयेगा तो अवश्य सफलता मिलेगी।

संसार में सभी भले कार्य संकल्प से पूरे होते हैं, जिसमें संकल्प शक्ति नहीं, वह संसार में सुकार्य नहीं कर सकता, इसीलिए वैदिक ऋषियों ने भी यही याचना की थी कि हमारे हृदय में कल्याणकारी संकल्प हो, जिससे हम निरंतर आत्मकल्याण के साथ लोक कल्याण कर सके।

रचनाकार की सफलता जिस ताले में बंद है, वह दो चाबियों से खुलता है। एक सकारात्मक सोच और दूसरा दृढ़ इच्छा शक्ति। यदि कोई भी ताला बिना चाबी के खोला गया तो आगे उपयोगी नहीं होगा। अतः साहित्यकार को सजगतापूर्वक राष्ट्रीय चेतना के लिए समर्पण भाव से योगदान देना चाहिए।

कहानी

सत्तर साल पहले

डॉ.गिरिजा शंकर मोदी,
सिकन्दरपुर, मिरजानहाट,
भागलपुर, मो0–9934095639

बातें आज से लगभग सत्तर साल पहले की है। आज के मूल्यों की गर्दिश की वह दुनिया अजब–सी थी। उन दिनों नारी सिर्फ अन्याय ही नहीं, वह एक सिसकती मायूस जिंदगी जिया करती थी, जहाँ उनकी उत्पीड़ित जिंदगी में वक्त भी ठहर जाया करता था। उन्हें न तो अपनी इच्छाओं की कोई पहचान हुआ करती थी और न उनमें अपने हिस्से के लिए कोई बगावत की बात ही हुआ करती थी। वह एक ऐसी कमजोर लता हुआ करती थी, जो पुरुष स्तंभ से लिपट अपनी महत्वाकांक्षा की मृगतृष्णा में जीने को विवश हुआ करती थी।

ऐसी ही आवोहवा में मानवता की धज्जियाँ उड़ानेवाले कल्लू सेठ की काली करतूतों की त्रासदी को भोगती भांड़िन रेशमा की दुखद मौत की बात, उस दिन तब आई जबकि सेठ की मौत कुत्ते से सड़ांध घावों को भोगते हुए हुई थी और उसके परिजन दूर खड़े हो, भाड़ा के लोगों द्वारा उनकी अर्थी सजवा रहे थे। सेठ की मौत पर उसके महल्ले अलीगंज में किसी की आँखें नम नहीं हुई थीं, जबकि अमूमन ऐसा होता है।

ऐसी ही घड़ी में महल्ले के बूढ़े–बुजुर्गों ने नई पीढ़ी के लोगों को कहा था–एक थी इस महल्ले की शीतल, शांत, निश्छल आँखोंवाली लड़की रेशमा भांड़िन। फूलों से लदी लता–सी वह सुगंध बिखेरती जब भी कभी किसी घर में जा चहकती है, तो घर का माहौल बदल जाता था, बड़ा सुकून लगता था, उसकी बिंदास छवि पर घरवालों को। महिलाएँ जब कहतीं–तुम आया करो रेशमा। रेशमा कनखियाँ मार मुस्कुराकर कह देती–आऊँगी, पर मजा तब आएगा, जब कोई खुशी के दिन लाओगी तब न। रेशमा जब रास्ते से गुजरती, तब अपने दरवाजे बैठे बुजुर्ग भी चहक उठते–देखो–देखो, रेशमा आ रही है। हाजिरजवाबी रेशमा पलटवार करती–''हाँ–हाँ, रेशमा ही जा रही है, बोलो क्या कहना है?' मुँहलगी रेशमा का बुजुर्गों के लिए भी कोई आदरसूचक शब्द न था, फिर भी रेशमा के रूपजाल व साफगोई से निकले हर शब्द का माधुर्य उन्हें सुकून दे जाता था। और फिर विधि की विडम्बना देखिए कि वही रेशमा पूर्णतया नग्न हो, अपने खोले कपड़े की पोटली बना छाती से सटाए सड़क, चौराहे एवं बेसुध दौड़ती नजर आती थी। लोग उसे देख अपनी आँखें नीचे कर लेते थे। फिर महल्लेवालों को उन दिनों की याद चलचित्र से उभर आतीं, जब रेशमा नदी की एक पतली निर्मल जलधार–सी श्वेत मोतियों सी चमकते–विहँसते जीवन के सोलहवें वसंत की दहलीज पार कर, नानी ननकी के पीछे–पीछे पीठ पर ढोलक लटकाए बलसाती, अगल–बगलवालों को निगाहों की मार देती चलती थी, तो उसका गौरवर्णा मादक सौंदर्य सबों के दिल को गुदगुदा जाता था। दिलफेंक तो कह बैठते थे–रेशमा जवान हो गयी, तीर कमान हो गई। पर रेशमा को ऐसी हवा बिन छुए निकल जाती थी। फिर समय के अग्निकुंड से निकली उनकी नानी कब रुकनेवाली थी, कहती–फतिंगे इसी तरह तुम्हारी रोशनी में जलते रहेंगे, रेशमा! हवा तो इसी तरह आती और जाती रहती है, पर कलियाँ अपनी पंखुड़ियाँ खोल जवान होती ही रहती है।

ननकी का भी अपना जमाना था। उसके पुष्पित लता जाल के सौंदर्य की परागी दुनिया में दीवानों की एक लंबी फेहरिस्त थी। दीवाने कहते थे–जमाने से ननकी नहीं, ननकी से जमाना है। ननकी को जब अस्स की उम्र ने घेरा था, तो भी उसका खंडहर बताता था कि इमारत कैसी रही होगी। खंडहरों से निकलते हलफनामा से रेशमा भी प्रशिक्षित हो चुकी थी। इस उम्र में भी ननकी की ढोलक पर थाप और आवाजों की ठनक जवान थी। ढोलक की थाप पर जब रेशमा के पाँव थिरकते तो उसके नुपूर की झंकार पर कद्रदांओं की वाहवाही परवान पर जा ठहरती।

रेशमा का टोला बाँका जिला के अलीगंज महल्ले के दक्षिणी छोर पर एक सदाबहार कलकलजोर के किनारे भांड़ों के चार–पाँच घरों का जमावड़ा था, जो अब खंडहर के रूप में भूतहा अवशेष है। महल्ले के लोग कहते हैं, वहा अभी भी गयी रात पायल की झंकार सुनाई पड़ती है। उस जमाने में इस टोला को अपना एक प्राकृतिक सौंदर्य और खास आकर्षण था। टोला से सटे बहती कलकलजोर में कई बड़ी–बड़ी चट्टानें थीं, जिससे टकराती जलधार श्वेत मोतियों में बिखर एक अद्भुत छवि देती थी और तट से सटे कदंब वृक्ष उसे छायादार बनाए रखते थे। भांड़िनियों का यह आधिकारिक जलक्रीड़ा स्थल हुआ करता था, जहाँ उन्हें बपर्द नहाने में कोई गुरेज नहीं था। कुछ लोग इसे नंगाजोर भी कहने लगे थे।

भांड़टोला में रेशमा के लंबे–चौड़े, साफ–सुथरे आंगन में चार–पाँच खटोलियाँ तरकीब से बिछी रहा करती थी और कल–कल ध्वनि और कदम्ब की फैली झूलती डाली के बीच यहाँ रातें, ढोलक पर थाप, नुपूर की झंकार और सुरीले गान के बीच रोज जवान हुआ करती थी। पर बातें नाचगान तक ही सीमित रहती थी। क्या मजाल की इससे इतर कोई बात अस्मत के रहते अपने डैने फैला पाए।

ननकी का पति अस्मत के मूँछों पर हर पल ताव देता एक शानदार भयमुक्त इंसान था। यह ननकी के साथ–साथ रह ढोलक पर थाप दिया करता था। सेठ कल्लू मन ही मन ननकी का दीवाना था और वह अपने रास्ते में अस्मत को बाधक समझ, हटा देना चाहता था।

एक दिन महल्ले में सुबह–सुबह जंगल की आग की तरह बात फैल गयी कि अस्मत की लाश नदी किनारे पड़ी है। इस घटना पर सबसे ज्यादा दुःख सेठ ने दर्शाया और रेशमा का हमदर्द बनने के प्रयास में जीने लगा था। पर ननकी अपने पति के आदर्शों पर न झुकी और न कहीं टूटी। वह पतिपरायणा पत्नी के मिथकों की घुट्टी पी ली थी। समय की चोट ने अस्मत की मौत को भूला दिया था, अब नानी और नतिनी ने महफिल को फिर से जिंदा कर दिया था। महफिल वर्षों बाद तक अपनी ऊँचाई में चलती रही थी। पर सेठ के दुखद कारानामों से रेशमा के परिवार का ही पटाक्षेप हो गया था।

इधर हाल के वर्षों में सेठ की मौत के दिन महल्ले में बूढ़े–बुजुर्गों को रेशमा की याद आ गयी थी। उन्होंने रेशमा की कहानी बयां की–इस महल्ले की एक भांड़िन रेशमा थी, उस भाड़िन ने इस सेठ की नाजायज हरकत पर एक जोरदार चपत जड़ते हुए कहा था–देख सेठ! हम भाड़िन सिर्फ नाच–गान करनेवाली हूँ और समाज के हर घर से एक सामाजिक रिश्ते से जुड़ी हूँ। हमलोग सबों को भाई–बहन, चाचा–चाची आदि रिश्ते से पुकारती हूँ। पर तुम–जैसे गंदे नाले के तलछट, जिसकी बुनियाद ही अमानवीय कृत्यों की है, वह क्या जाने?तुम तो अपने बाप–दादा के नाजायज अर्जित संपत्ति के घिनौने ढूह पर उगे विकृतियों के पाशविक जीवन जीने वाले हो। बात यह थी कि होली के दिन भांड़टोला में विशेष महफिल सजी थी। रेशमा राधा के रूप में थी और एक युवक कृष्ण के रूप में। कृष्ण की पिचकारी की रंगधार से रेशमा स्नात हो रही

थी, कपड़े वदन से चिपके उभार को छिपाने में असफल हो रहे थे और रेशमा इन बातों से अलग गा रही थी–मत मारो श्याम पिचकारी रे, मेरी भींगी चुनरिया सारी रे। नशे में भुत्ते सेठ का मन मचल गया। सेठ आया भी था आज एक घिनौना मन्सूबा के साथ, वह बीच–बीच में रेशमा को नोट का बंडल दिखाता आँखें मारता था। सेठ की इस नाजायज हरकत पर रेशमा कहाँ रुकनेवाली थी, वह कौंधी और बरस पड़ी–अभी तक तुम संभले नहीं हो, नोट के बंडल दिखा रहे हो। अरे तुम हारामखोर लोग! अपने गंदे पूर्वजों द्वारा गरीबों का खून–पीसने, उनकी आहों और दर्द के कब्र से उठाये गये नोट क्या दिखाते हो, चुपचाप मेरे नाच–गाने तक अपने को सीमित रख,नरक के कीड़े! सेठ अपनी बेइज्जती का कड़ुवा घूंट पीता, मौन अवाक् बैठा रहा। वह काम लिप्सा के आंतरिक ज्वार की नौका पर सवार तट पाने की आशा में सब सहने को विवश था। लेकिन हठात् नशे के झोंके के पागल बहाव में उठा और पकड़ ली रेशमा की कलाई। पर दूसरे ही क्षण रेशमा की जोरदार चपत सेठ के गाल पर पड़ी थी और सेठ सन्न किंकर्तव्यविमूढ़ अपनी जगह पर आ बैठ गया था।

हतप्रभ ननकी का भी तेज जागा था–सेठ! अगर तुम्हारा कुछ ऐसा ही मिजाज है, तो कोठेवाली के पास जा। खैर, मनाओ कि वे जीवित नहीं है, नहीं तो तुम्हारा क्या हाल होता, कह नहीं सकती। महफिल भंग हो गयी थी, पर सेठ बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा था, फिर तिरस्कार को भोगता हुआ सरक गया था।

फिर दूसरी रात सेठ रेशमा के आंगन में आ, पंख समेटे, डाल पर एक अकेला पक्षी–सा, बेखबर आँख मूँदे बैठ गया। रेशमा की रोशनी में सेठ का फतिंगा मन कहाँ दूर रह सकता था?वासना के ज्वार के उछाल में तट अर्थहीन था। रेशमा के सौंदर्य के सरगम में वह डूबता–उतराता रहता था।

विनीत भाव में एक निर्दोष बालक–सा अब सेठ चुपचाप बैठा रहता, पर समय के बहाव में तट खोजती रेशमा में, सेठ की विनम्रता व समर्पण पर, अंदर–अंदर कुछ पलने लगा था। कुछ था जो रेशमा के भीतर ही भीतर घुमड़ रहा था। श्वेत झीने बादलखंडों ने घेरा था उसे और कभी–कभी एक किरण उससे छिटक, सेठ के भावलोक में एक उजास दे जाता था।

फिर अगली रात की महफिल के बाद, पता नहीं क्यों?रेशमा के आंगन में एक भूतहा विरागनी छाई हुई थी। जबकि पूनम की टहटह चाँदनी थी, कभी–कभी झीनी मेघमालाएँ उससे हो गुजर जातीं। मिथकों की नानी भी चाँद पर चरखा काटती नजर आती थीं और चाँदनी रेशमा के आंगन में पत्तों से छन बिखरी एक अद्‌भुत छवि बिखेरती छिप–छिपकर टुकड़ों में मोहक मुस्कुराहट में थी। रेशमा और ननकी के बीच मौन गहरा रहा था। रेशमा खोई थी चपत की आवाज में और कलाई की पकड़ गहरे अहसास में और भावों के आवारा चहलकदमी में। ननकी कई बार रेशमा–रेशमा पुकार रही थी, पर रेशमा इस तरह खोई थी कि कुछ सुन ही नहीं पा रही थी। पर जोर की एक आवाज पर रेशमा मुड़ी–क्या नानी! नानी मुस्कुराती हुई सहज भाव से बोली–'तुम किस सोच में पड़ी हो बिटिया?जो हुआ, वह अच्छा ही हुआ।' क्या नानी! चपत जड़ देना अच्छा रहा?जड़ दिया तो जड़ दिया, अब क्या सोचना, वह सेठ तो पतित है। देखना वह कल फिर आएगा और फिर आएगा। इतना कह वह रेशमा के और करीब आ, उसकी आँखों में आँखें डालती हुई मुस्कुराई थी।

सेठ होली के दिन के रंग स्नात रेशमा के पारदर्शी दैहिक उभार को अपनी आँखों में संजोए भूल नहीं पा रहा था। अपने विचलित मन को शांत रखने वह बोतल पर बोतल गड़कने लगा था। सुबह देर तक वह सूरज की रोशनी में निढाल पड़ा ही रहता था। सेठानी तिरस्कृति भाव से उसे देख, घर के पूजाघर में बने कई देवी–देवताओं की मूर्तियों की पूजा–अर्चना में घंटों रहती थीं, इन सारी मूर्तियों का कीमती निर्माण सेठ के पूर्वजों का उनकी काली कमाई का मनोवैज्ञानिक प्रतिफल था।

सेठ की नींद अब घंटी की आवाज, भक्तिगान एवं सूरज के ताप के बीच खुलती थी। सेठ अलसाया हुआ रोज चिल्लाता था–सोनिया की माँ! अब भी तो वश करो, कितनी घंटी बजाओगी?कितना भक्तिगान करोगी?फिर वह खुद उठकर तिजौरी पर माथा टेक बुदबुदाता–'अरे! तुम्हें भगवान ने बहुत दिया है, क्या चिंता?' सेठानी कहती–'तेरे मुँह में मिर्च पड़े।'

होली का चौथा दिन था, आज सेठ पिया नहीं था, पर उसकी रात उनींदी थी, वह रातभर अन्यमनस्क चहलकदमी करता रहता था। और फिर सबेरे ही एक जोड़ी बालियाँ ले रेशमा के घर आ धमका। बड़ी ही विनम्रता से ननकी के पास बैठ गया और बालियाँ ननकी के हथेली पर रख बोला–ननकी! बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि हथेली को एक अच्छी बाली दूँ। देखा आज तिजौरी में यों ही अनेक बालियाँ पड़ी थी, उसमें से एक चुनकर सुषमा के लिए लाया। ननकी बुरा न मानना में चाहता हूँ, खुद में अपने हाथों से पहना दूँ। थोड़ी देर तक ननकी सेठ के चेहरे को रहस्यमय नजरों से देखती रही, फिर बोली जा पहना दे और रेशमा को कही, पहन ले रेशमा। फिर सेठ को कही–देख सेठ, कहीं दूसरी नजर न डालना, सेठ कान पकड़ नाटकी अंदाज में कहा था–ना ननकी, ना!

उम्र ननकी को अब भारी पड़ने लगी थी। समय के झंझावात में पतझड़ की धड़ बनी वह अब स्वभाव के माधुर्य से अलग, बदन की विद्रूपताओं और आवाज के कर्कश जीवन में थी। अब उसकी नग्न डालियों से कोई कोयल न कूकती थी, न डालियों पर फुदकता कोई चिड़िया मन ही था। पत्रहीन डालियाँ एक निराशाजनक भाँय–भाँय में थी। वह अपने अन्तर्मन के अभिशप्त जीवन में फैले हुए सवालों के बीच आक्रोशित मन हो जी रही थी।

ननकी झुर्रियों से लदे चेहरे की ओट ले, अपनी अनुभवजन्य आँखों की आवाज बन, अपनत्व की घाट पर मर्म के जल की उछालों में बुदबुदाती–रेशमा मैं मर जाऊँगी, पर मुझे मरने पर भी शान्ति न मिलेगी, मेरे बाद तुम्हारा क्या होगा?माँ–बाप सबों को ईश्वर ने तुमसे बचपन में ही छीन लिया था और फिर जवानी में ही पति को भी। फिर अश्रुपूरित आँखों में वह कहाँ खो जाती पता नहीं। रेशमा के अभिशप्त, जीवन के मुश्किल क्षणों की कल्पना उसे एक ठहराव की स्थिति में ला खड़ा करता था। फिर बातें कौंधती कि उसकी सहानुभूति की वैशाखी पर और कबतक रेशमा का जीवन चल पाएगा। इस सोच ने ननकी को और जर्जर कर दिया था और महीनों ने बीता कि जीवन का वह भयावह दौर आ खड़ा था।

ननकी बहुत बीमार थी। जीवन की अनगिनत कहानियाँ, प्यार, दुलार, गीत–संगीत सबके सब एक खाट के बीच सिमटी पोटली–सी पड़ी थी, कोई सुगबुगाहट नहीं। एक विविध रंगोंवाली फुदकती चहकती मधुर कंठवाली चिड़िया गिरकर धप्प सिमटी पड़ी थी। सब कुछ खो गयी थी, गहराती रात के जंगल के अंधेरे में।

सुबह सूरज की पहली किरण के साथ ही, यह बात जंगल की आग की तरह ही फैल गई कि ननकी सेठ के बाप–दादों की मौत पर भी ऐसी भीड़ न जुटी थी। ननकी की इमारत–सी बदन के खंडहर को देखने, वह इमारत जो एक बार अपने प्रवेश द्वार खोल देती थी, तो हरेक की आँखों में वासना का सागर लहरा जाता था और कानों में ननकी की दर्द भरी गान की लाड़िया–'ना जाओ सइयाँ छुड़ा के बहियाँ, कसम तुम्हारी मैं रो पड़ूँगी...' गूँजने लगती थी। ननकी की उसी चहकते दिनों की याद में भीड़ जुटती चली गयी थी। ननकी के पिंजड़े का तोता एक दिन पूर्व से ही अपने खाने में चोंच नहीं डाला था और अपनी आत्मकरुणा में आँख मूँदे बैठा था। रेशमा अपनी बुझी फटी सूखी आँखों में नानी के सिरहाने जमी बैठी थी। उनकी आँखों के कोटरों में अब आँसू न थे। वह आने–जानेवालों को अपने भावहीन स्थिर आँखों के मौन में समेटे पथराई जा रही थी। कुंठा और हताशा का जीवन क्षितिज का अंधेरा हो, गहरा गया था।

संस्कार के सारे खर्च सेठ ने अस्वाभाविक रूप से उठा लिये थे। सेठ दिखावे की संवेदना के द्वार खोल रेशमा को उसके बीच–बीच में दहाड़ मारने के क्रम में व बहोशी के क्रम में संभालने के बहाने, वर्षों से मन में संजोये छुअन का सुख लेने की लालसा की पूर्ति उसके अनजाने में कर रहा था।

ननकी की कुतिया उस दिन कहीं नजर नहीं आ रही थी। एक पड़ोसन ने नजर दौड़ायी तो देखी, कुतिया ननकी की खाट के नीचे ही मृत पड़ी है। रेशमा बोली–जबसे नानी बीमार थी, वह नानी को छोड़ कहीं नहीं जाती थी। कल इसने खाना–पीना भी छोड़ दिया था, रात में बिल्ली के रोने पर कुतिया उसे दूर तक खदेड़ आयी थी।

सेठ बेसहारा व टूटी रेशमा को अनजाने में जीत लिया था। पता नहीं, क्यों इस व्यथा के बीच रेशमा में सेठ के प्रति एक शाश्वत विश्वास जागा था। रेशमा को लगने लगा कि उसके नाव की पतवार सेठ ही थाम सकता है।

जड़ों से उखड़े मुर्झाये पौध को फिर से सिंचित कर हरा–भरा कर लहरा देने का हर संभव प्रयास माली बन सेठ ने शुरू कर दिया था। सेठ के सहारा रूपी धड़ में रेशमा लता–सी लिपटती जा रही थी। और फिर एक दिन मजबूर रेशमा ने सिसकते हुए अपना सिर सेठ के कंधे पर रख दिया था। प्रेम की तरंग स्पंदित होने लगीं, पता नहीं क्यों पहले ही छुअन में रेशमा में ऐसा होने लगा। रेशमा अब सेठ की मान्य रखैल थी। उन दिनों रखैल मर्दों की शान की एक सामाजिक मान्य परंपरा थी। सेठ का मन अब रेशमा के मादक परागी सौंदर्य के रसपान पर सब कुछ लुटा देने पर आमदा था। अब सेठ की स्वीकृति पर ही रेशमा की महफिल में कोई शामिल हो पाता था।

लेकिन एक अंदरूनी बात थी, सेठ का प्यार जहाँ कागज के कृत्रिम फूलों से लदा था, वहीं रेशमा अपने प्राकृत फूलों के परागों के रसगंधों से लदी थी। अपने शाश्वत विश्वास की पराकाष्ठा में रेशमा का प्यार निर्झर–सा झरता आगे बढ़ता सेठ के संभावित अदृश्य गढ्हों को भरने के हर प्रयास में रहता था। पर वास्तविकता तो यह थी कि दोनों ही यौन आवेग की टकराहट के पागलपन में रोज नये–नये वादों के भावनात्मक झड़ी लगा रहे थे। प्रेम के इस आबद्ध दुनिया में सेठानी की बात आती तो सेठ घृणाभाव दर्शाते कहता–वह तो मात्र देहभर है, वह क्या जाने प्यार क्या है?सच कहूँ–रेशमा! तुम्हारे प्रेम के गर्म उसाँसें ने ही मुझे नया जीवन दिया है। मैंने तो तुमसे ही जाना प्यार क्या होता है?

ऐसे प्यार के वादों और बोलों के बीच एक युग से ज्यादा गुजर चुके थे। रेशमा की देहयष्टि का आकर्षण समय की भेंट चढ़ता जा रहा था। लता और सहारे दोनों की पकड़ ढीली पड़ती जा रही थी। रेशमान के तराशे बदन का मांसल आकर्षण का ढीलापन अब सेठ महसूस करने लगा था। सेठ कहता रेशमता अब तो तुम बढ़ी होती जा रही हो। रेशमा को ये बातें काँटे–सी चुभ जाती। कहती–ये सेठ! सारे मकरंद रस पीकर पंखुड़ियों पर बैठ अंगूठे दिखाते हो। अब छोड़ो मुझको, कह रेशमा छिटक जाती थी। सेठ कहता–ना रेशमा, ना। तुम रूठ गई और फिर सेठ चील झपट्टे मार उसे खुद में समा लेता था और फिर कब हर शृंगार के सारे फूल झड़ बिछ जाते पता नहीं। सुबह रेशमा जम्हाई लेती, अलसाई सी उठती और आईने के सामने खड़ी हो अपने परागहीन उड़े थके चेहरे को देखती तो क्षणभर निर्लिप्त बैठ सांसें ले लेती थी।

एक दिन सेठानी ने सेठ से मुस्कुराते हुए छेड़खानी के अंदाज में पूछा–क्या हाल है तुम्हारी रखनी की बेटी का, अब तो वह भी जवान हो गई होगी, क्या वह भी तुम्हारी होगी?सेठ चुप रह गया, पर यह बात उसके सूने होते मन के कोने में कौंध गई। रात के अंधेरे में बिल्ली की आँखें चमक उठती है।

समय रेशमा पर भारी पड़ रहा था। वह ग्रीष्म की निराश सूनी दोपहरी को खुद में समा अनमने करवटें बदल रही थीं। उसके ललाट की सिलवटों में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों गुत्थमगुत्था थे। तभी उसके सिरहाने दबे पाँव सेठ आ खड़ा था। रेशमा उनकी उपस्थिति जान गई थी और एक भयभीत हिरणी की तरह सिर उठाकर देखी थी। सेठ की नजर उसके कान पर पड़ी–अरे! यह क्या तुम्हारे कान खाली हैं?सेठ की आज की आवाज ने उसे बेध दिया था। बोली–सेठ आज मैंने तुम्हारे बाप–दादा के पाप को धो दिया है। वे बाली बेचारी दूधवाली की थी, जिसे गिरवी के नाम तुम्हारे बाप ने हड़प लिया था। वह बेचारी रोज उस बाली को एकटक देखती थी, मैंने उससे पूछा था और रहस्य जान गयी थी, उसके ना कहते भी मैंने उसे लौटा दिया। सेठ के मुँह से निकला–सत्यानाश!

समय के साथ–साथ सेठ मुखौटे से बाहर आने लगा था और रेशमा में एक अज्ञात भय समाने लगा था, उसे सेठ की आँखों में एक प्रेत–चेहरा दिखने लगा था, जहाँ रेशमा की रूह धड़क–धड़क कर रोने लगी थी। रेशमा को तोड़ने में देर न लगी थी कि पापी सेठ की नजर उसकी बेटी सुषमा पर है। पर वह संकल्पित थी कि अपनी जिंदगी के घिनौनेपन का तलहटी जीवन वह अपनी सुषमा को न देगी। वह उसे ऊँची शिक्षा दे नई दुनिया देगी और इसके लिए वह सेठ के आर्थिक सहयोग पर निर्भर थी। यही लाचारी उसको खाये जा रही थी। इन परिस्थितियों में लाचार रेशमा अपनी ढलान पर भी सेठ को बाँधे रखने की कला का रोज ईजाद करती रहती थी। पर सेठ का मन रेशमा से उचट चुका था, शिकारी नई चिड़िया की तलाश में था, तलाश तो हो चुकी थी, अब उसे फंसा लेने की जाल बुननी थी।

रेशमा अब अपने को कटे पंखोंवाली चिड़ियाँ के अन्दरूनी अहसास में जीने लगी थी। फिर भी उसका आत्मबल आधिकारिक बात में ठोस था। सेठ के हर दाव–पेंच से वह वाकिफ थी। वह कहती–सेठ ज्यादा मत बनो, मैं उड़ती चिड़िया का पंख पहचानती हूँ। कुछ शर्म भी तो करो। इसी सोच के क्रम में वह अपनी बेटी की दूरी सेठ से बनाये रखने का हर संभव प्रयास करती रहती थी। सेठ को यह नागवार लगता और प्रतिक्रियास्वरूप वह किसी–न– किसी बहाने रेशमा को पीटता ही नहीं, बल्कि उसे मुफलिसी में ढकेलता रहा। एक तो मौसम का पतझड़ और दूसरे उसपर तूफान का झोंका रेशमा को परेशान करने लग गया था। पर वैचारिक दृढ़ता का वटवृक्ष उसके अंदर खड़ा था।

एक शाम हठात् चुपके सेठ अपने गंदे मंसूबे को पाले सुषमा के कमरे में आ धमका और सुषमा के बिल्कुल करीब जा फूली साँसों से कहा–सुषमा! तुम क्या करती हो, देखो, मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ?रेशमा औसारे पर सतर्क बैठी थी–झट से बोल उठी, अरे! क्या है मुझे दिखाओ, सुषमा पढ़ रही है, मैं दे दूँगी, उसकी कल परीक्षा है। इसपर सेठ की आँख आग उगली और रेशमा के पास आ, उसे एक जोरदार तमाचा जड़ दिया। सेठ अपने पूर्ण आधिपत्य के पुरुष भाव में था। वह अपने और सुषमा के बीच कोई बाधक तत्व न आने देना चाहता था।

माँ को जड़ी गई चपत पर सन्न निर्दोष सुषमा बीच में आ खड़ी हो गयी, उसकी समझ में बातें न आ रही थीं। माँ ने आँखें नीची कर धीरे से सुषमा को कहा–तुम जा पढ़।

सेठ अपने अपराधबोध मे वहाँ से खिसक सीधे घर आकर सेठानी से सट बैठते हुए बुदबुदाया–ये औरतें साली बड़ी नमकहराम होती हैं सेठानी ने तुरत प्रतिक्रिया दी–लगता है रखनी ने तुम्हें आज लताड़ा है। सेठ अनमने उठ गया।

रेशमा अब समय की मार से रखैल होने के पश्चाताप कर अग्नि में रोज जलने लगी थी। उधर सेठ अपनी यौन–पिपासा की की अनियंत्रित आग बुझाने को तलाशे शिकार को फँसाने में परेशान था। जहाँ सारी नैतिकता और मर्यादाएँ हवशी मन के पाँव बेरहमी से कुचली जाने को थी। पर रेशमा की लौह दीवार का सुरक्षा कवच ऐसा न होने देने को आमदा था। परिणामस्वरूप सेठ का

अनियंत्रित हवसी मन हिंसक को ऊफाने मारने लगा था।

रेशमा अब स्याह बादलखंडों से घिरने लगी थी। मुफलिसी मुँह फाड़े खड़ी थी। रेशमा सड़क के गढ्हे में पटक दी गई थी। गढ्हे से निकलने के हर प्रयास में फिसल रही थी।

सेठ अपने दाव–पेंच में एक दिन सनकता हुआ आया और रेशमा के बक्से तोड़ अपने दिये जेवरात निकाल लिया, रेशमा भी प्रतिक्रियास्वरूप अंगुली से अंगूठी निकाल उसके चेहरे पर फेंक दी थी।

एक उनींदी रात रेशमा के मन में एक बात कौंधी। क्यों न अपने टोले के सटे नुक्कड़ पर एक चाय–पान की दुकान खोल ली जाय। सुषमा को भी यह बात भाई। दुकान खुल गई। दुकान चल भी गई। रेशमा तो बचपन से भी पान की गिलौरी और चाय बनाने में माहिर ही थी। इधर सेठ अपने तरकश के सारे तीर निरर्थक होते देख रेशमा के समक्ष गिड़गिड़ाने लगा था। रेशमा की मर्द की गिड़गिड़ाना, क्षमा माँगना, पैर पकड़ना और वादों की झड़ी लगाना आदि मखौटे के पीछे छिपी बातें वह समझती थी। सारे पतंगों की डोर तो नानी ननकी उसे थमा गयी थी। रेशमा कहती थी–थू है तेरे मुँह पर, कुत्ते की जात, नाले के तलछट, धोखे बाज, घिनौना कामी पिशाच, तुम्हें भी कीड़े पड़ेंगे अपने बाप–दादा की तरह ही। हाथ जोड़ता सेठ कहता था–नहीं रेशमा, नहीं, मैं तेरे सारे गहने लौटा देता हूँ। माँ कसम, अपनी पापी नजर को समेट लूँगा। पर रेशमा अब इस चाल में न आनेवाली थी। कहती–सेठ मैं थूके थूक को नहीं चाटती, चल जा यहाँ से, पर सेठ पतित–सा बैठा ही रहता था उसके आंगन में।

रेशमा विवशता के गुहावास में सेठ की मंशा को अनदेखी करती, सुषमा के भविष्य की चिंता और सेठ के बाजपंजों से उसे बचाये रखने की चिंता में जी रही थी। उसके अवसादग्रस्त जीवन के आँसुओं से उसके मन की मिट्टी भींगती–भींगती बह गयी थी और फिर साँय–साँय करती हवा उसे रौंदती रही थी।

ऐसे परिवेश में ही माँ–बेटी सटकर बैठी थी, एक दूसरे के शरीर की ऊष्मा, संवेदना का भाव, अपनत्व की मिठास, अपने मुफलिसी के जीवन में भी एक आत्मीय सुख दे रहा था। गौरैया घोंसले से बाहर आ दाना चुग रही थी। ऐसे ही भावुक क्षण में माँ का हाथ पकड़ सुषमा, अपनी आँखों से मासूम दुधिया चमक को तिरोहित करती, कठोर हो आधिकारिक रूप में माँ से पूछी थी–आखिर बात क्या है, माँ! ऐसा तो पहले कभी न होता था। माँ! हमें तो वे बहुत मानते हैं। कहते थे–तुम्हें जीवन में कोई कमी न होने देंगे, जीवन मौज–मस्ती के लिए, पढ़ने–लिखने से क्या होता है, तुम्हें घुमाने ले जाऊँगा।

रेशमा ठहर गंभीर हो गयी। पतझड़ की एक सूनी मुकम्मल दोपहरी उसमें समा गयी थी, आँखें विस्फारित अपलक हो गयी थी। आशंकाओं के गहराते स्याह बादलखंड उसे घेरने लगे थे। एक आसन्न खतरे से वह काँप रही थी। उसने सुषमा के प्रश्नों का कोई जवाब न दी थी। मात्र अपनी आँखें उसपर टिका दी थी।

सेठ अपनी मंशा की पूर्ति होते न देख, पागल–सा करने लगा था। सेठ के हरामखोरों की चांडाल चौकड़ी में जब एक दिन शराब का दौर चल रहा था, तो नशे में भुत्त किशुन ने कहा–तुम्हारी रेशमा में अब कुछ रहा भी है, जो तुम उस खंडहर के संत बने बैठे हो। तुम्हारी अपार संपत्ति किस काम की, अब लुटा किसी नवयौवना पर। फिर किशुन ने आह भरते हुए कहा–लेकिन इसे मिलेगा कहाँ–शराबियों का ठहाका गूँजा था। सूरजा ने इसी बीच कहा–यह जाएगा कहाँ, रेशमा की बेटी सुषमा भी तो जवान हो गयी, तीर कमान हो गई। माहौल शांत हो गया था। सबों ने सेठ की ओर देखते हुए कहा था–क्या सेठ? नशे में भुत्त सेठ डगमगाते हुए कदमों से उठा, घर जा तिजौरी से एक पोटली गहने उठा रेशमा के घर जा दमका और पोटली रेशमा की गोद में डाल, कहा–ले लो सब जेवर, हो जाओ अमीर और दे दो मुझे सुषमा को। अब तुम में क्या रखा है? तुम धन से करो मौज–मस्ती, मैं सुषमा से करूँगा मौज–मस्ती, आखिर इतने धन का मैं करूँगा क्या?

रेशमा के अंदर की शक्तिरूपा दुर्गा ने जोर मारा, उस पोटली को उठा उसने सेठ के मुँह पर सीधे मारा, सेठ का चेहरा लहुलूहान हो गया। सेठ का नशा टूट गया था। फिर मारपीट का हिंसक दौर शुरू हो गया। दोनों ओर से लात–जूते, मुक्कममुक्की चलने लगे थे। सुषमा दौड़ी बीच में आ गयी थी, वह भी चोटिल हो गयी। सेठ का गुस्सा परमान पर था। सेठ ने बीच में आई सुषमा को जोर का धक्का दे दिया था, इससे सुषमा का सिर आंगन में रखे एक चट्टान से टकरा गया। खून का फब्बारा फूटा और वह वहीं ढेर हो गयी। सुषमा चिल्लाई और सेठ भय से काँपता रफू चक्कर हो गया।

भयाक्रांत सेठ ने अपनी तिजौरी खोल दी थी। भ्रष्टाचार पोषित व्यवस्था के दलाल, चमचे, पुलिस सबके सब सेठ रक्षा कवच हो खड़े हो गये थे। अपराध रेशमा के माथे मढ़ दी गई थी। बातें सड़क पर आई कि सुषमा के गलत आचरण के कारण माँ ने ही उसे धक्का दिया था, सेठ तो माँ–बेटी के झंझट के बचाव में था। झूठी बातें हवा में फैल गई। सच्चाई धरी की धरी रह गयी। कहावत सही है–झूठ जब आधी दुनिया का सफर कर लेती है, तो सत्य जूते ही पहनता रहता है और यहाँ तो जूते पहनाने का अवसर ही नहीं मिला।

हतप्रभ रेशमा हाथ जोड़ सच्चाई बयान करती रही थी। पर सब नक्कारखाने में तूती की आवाज थी। उसके पंख कुतर दिये गये थे, पैरों में बेड़ियाँ लग गयी थीं। आँखें फटी की फटी रह गयी थीं, मस्तिष्क कुंद हो गया था। सच्चाई के लिए आरजू–मिन्नतें, गुहार सबके सब तिजौरियों के आगे बौने पड़ अन्याय के गर्त में समा गये थे। पास–पड़ोस भी सेठ के पक्ष में थे। खुली तिजौरी के मुँह ने गहरा रंग लाया था। सामाजिक विपणन ने अपनी चाल चल दी थी। सुषमा को लोग बेटी की हत्यारिणी कहना शुरू कर दिया था। रातोंरात रेशमा की गुमटी भी सेठ के गुंडे उठाकर चल दिये थे।

कल्लू सेठ के जीवन में अब पीना, बड़बड़ाना और सेठानी का दुत्कार मात्र ही था। हाँ, रेशमा के प्रति अगर किसी की सहानुभूति थी तो वह सेठाइन की।

सुषमा ग्यारह दिनों तक घर के एक कोने में बुत बनी बैठी रही थी। सुषमा के दाह संस्कार से लेकर श्राद्धकर्म तक सेठ के गुर्गे ने किया। सेठ के पाशे के इस खेल में सेठ की जय–जयकार करा दी थी।

रेशमा के घर प्रेत छाया–सी भयावह वीरानगी थी, आस– पास क्या, दूर–दूर तक जिंदगी नजर न आ रही थी। घर के एक कोने में मौन बैठी रेशमा अपने आपमें बुदबुदाने लगी थी। फिर एक दिन वह अपने सारे पहने कपड़े नोच नंगी हो गयी और उसकी एक पोटली बना सीने में सटा गली, सड़क, चौराहे पर बेसुध बेतहासा दौड़ने लगी, न किसी की सुनती, न किसी से बोलती थी। वे लोग जो कभी रेशमा की एक झलक पाने को तरसते थे, वे आज उसे देख नजरें झुका लेते थे। फिर एक दिन वह दर्द के किस गह्वर में समा गई थी, किसी का पता नहीं। लेकिन एक दिन यह बात फैली कि रेशमा की लाश नदी किनारे झाड़ी में पड़ी, उसे गिद्ध, चील, कौए और कुत्ते नोंच–नोंच खा रहे हैं। पर उसकी मोहक आँखें उसी रूप में खुली, फैली और साबूत हैं। भाव उमड़ पड़ी थी–

''कागा सब तन खाइयो, चुनि चुनि खाइयो मांस।
पर नयना न खाइयो, पिया मिलन की आस।''

वर्षों खाट पर पड़े कल्लू सेठ की दर्दनाक मौत पर महल्ले के बूढ़े–बुजुर्ग उनके घिनौने करतूतों में लिपटी रेशमा की त्रासदी कहानी कहते–कहते अपनी आँखें नम कर रहे थे।

स्मृति

नौजवान भारत सभा

डॉ. ऊषा निगम
कानपुर
9792733777

यह चर्चा बीसवीं सदी के तीसरे दशक की है। यह वह कालखंड था, जब क्रांतिकारी आंदोलन का तीसरा चरण आरंभ हो चुका था। भगत सिंह क्रांतिकारी आंदोलन का हिस्सा बन चुका था। वे आंदोलन को गति देने की दिशा में प्रयासरत थे। 'नौजवान भारत सभा' इन्हीं प्रयासों का फल थी, जिसकी स्थापना उन्होंने 1926 में लाहौर में की थी। अपने देश को ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी से आजाद करने का जज्बा उसके खून में था, तभी उन्नीस वर्ष की आयु में उन्होंने एक ऐसे संगठन की नींव रखी थी, जो अपने सिद्धांतों और आदर्शों में किसी से कम नहीं था। निस्संदेह इस कार्य में उन्हें अपने अनेक साथियों और गुरुजनों का साथ मिला; लेकिन यह सच है जैसा कि 'इन्क्लाबी यात्रा' की लेखिका मनोराम दीवान लिखती है कि नौजवान भारत सभा का 'बीज तो क्रांतिकारी भगत सिंह के दिमाग की पैदावार था।' 1924 के केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव के समय इस बीज का जन्म हुआ। इस चुनाव में भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह कांग्रेस की ओर से प्रचार कार्य कर रहे थे। कांग्रेस के विपक्ष में लाला लाजपत राय थे, जिन्होंने 'इंडिपेंटेंट कांग्रेस' पाटी बना ली थी। यह हिन्दू विचारधारा प्रधान दल था। इस चुनाव में भगत सिंह ने अपने पिता का पूरा साथ दिया था। इस सहभागिता के बीच (उन्होंने) एक सार्वजनिक आंदोलन का रोमांचकारी उल्लास अनुभव किया था। इस सार्वजनिक आंदोलन में इस रोमांचकारी उल्लास को वे गुप्त सशस्त्र क्रांति आंदोलन से जोड़ना चाहते थे। नौजवान भारत सभा उसी का एक उपकरण थी।

(वीरेन्द्र सिंधु 'युगद्रष्टा भगत सिंह', पृ. 132)

भगत सिंह क्रांतिकारी आंदोलन की विचारधारा को एक खुला मंच देना चाहते थे। गुप्त आंदोलन होने के कारण सशस्त्र आंदोलन आम जनता से नहीं जुड़ सका, न ही उसमें लोकप्रिय हो सका था। भगत सिंह आंदोलन की इस कमी को दूर करना चाहते थे। इस कार्य में उन्हें सबसे अधिक सहयोग भगवती चरण वोहरा का मिला। लेकिन प्रिंसिपल छबील दास, कॉमरेड रामचन्द्र और सुखदेव की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी।

इस सभा के गठन से संबंधित सबसे पहली बैठक लाहौर के ब्रैडला हॉल में हुई थी। भगत सिंह के निकटतम सहयोगियों के अतिरिक्त इस बैठक में नेशनल कॉलेज के अध्यापकों और विद्यार्थियों को आमंत्रित किया गया था। इस सभा में भाग लेनेवाले सभी व्यक्ति कांग्रेस की नीतियों से असंतुष्ट थे। पूर्ण अहिंसा में उनका विश्वास नहीं था। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि देश को आजाद करने के लिए जितनी सक्रिय और आक्रामक नीति की आवश्यकता थी, उतनी आक्रामक नीति कांग्रेस की नहीं थी। कांग्रेस से असंतुष्ट रहने पर एक और कारण भी था। अपने शैशवकाल से ही भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का लक्ष्य देश की पूर्ण स्वतंत्रता दिलाने का रहा। लेकिन अभी तक कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता को अपना लक्ष्य नहीं बनाया था।

नौजवान भारत सभा इटली, रूस, आयरलैंड और तुर्की की क्रांतियों से प्रभावित थी। इन देशों के नौजवानों ने अपने–अपने देश की क्रांतियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। भगत सिंह चाहते थे कि भारत के नौजवान भी खुलकर देश के मजदूर और किसानों के बीच कार्य करें और उन्हें आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने के लिए उत्प्रेरित करें। इससे यह स्पष्ट होता है कि समाजवादी विचारधारा सभा की स्थापना का आधार थी। सभा की कार्यवाही हिन्दुस्तानी भाषा में होती थी। स्वयं भगत सिंह ने नौ.भा.स. से संबंधित स्टेशनरी डिजाइन की थी, जिसपर इस संगठन का उद्देश्य भी छपा होता था, जो इस प्रकार था–'डवजजव ैश्ै' अर्थात् ैमतअपबमएैं बतपपिबमए ैनमितपदहश अर्थात् 'सेवा, कुर्बानी और संघर्ष।'

कॉमरेड रामचन्द्र नौ.भा.स. के प्रेसिडेंट, भगत सिंह महासचिव और भगवती चरण वोहरा सचिव थे। इस संगठन का यशपाल, धन्वन्तरी, एहसान इलाही, फजल मंसूर जैसे साथियों का भरपूर सहयोग मिला; साथ ही पंजाब कांग्रेस के वामपंथी नेताओं उदाहरणतः डॉ. सत्यपाल, डॉ. किचलू, केदारनाथजी सहगल, पिंडीदासजी आदि का भी सहयोग मिल रहा था। (यशपाल–'सिंहावलोकन' भाग 1, पृ. 92) पंजाब के साथ ही अन्य प्रांतों में भी नौ.भा.स. की शाखाएँ खुलने लगी थीं। सभा के संस्थापकों का एक और उद्देश्य भी था। वे सभा से जुड़नेवाले नौजवानों में से उत्साही नौजवानों को चुनकर क्रांतिकारी आंदोलन में शामिल करते थे।

इस संगठन के क्रांतिकारी विचारधारा के प्रचार की ओर विशेष ध्यान दिया। संगठन की ओर से समय–समय पर सार्वजनिक जलसों का आयोजन किया जाने लगा। इन जलसों में कांग्रेस की समझौतावादी नीति की आलोचना होती थी; पूर्ण स्वराज्य की माँग और देशहित से संबंधित अन्य विषयों पर भाषण दिए जाते थे। प्रचार कार्य के लिए मैजिक लैटर्न की भी मदद ली जाती थी। इस विधि के द्वारा क्रांतिकारियों के चित्रों का प्रदर्शन करने के साथ–साथ उनके जीवन से जुड़े इतिहास का ओजपूर्ण भाषा में वर्णन किया जाता था, ताकि लोक क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकें। साथी शिव वर्मा ने लिखा है कि 'प्रचार का यह (मैजिक लैटर्न) एक सशक्त माध्यम थी।' (संस्मृतियाँ, पृ. 22) यशपाल लिखते हैं कि 'प्रकट आंदोलन से क्रांति का जितना प्रचार संभव था, नौजवान भारत सभा कर रही थी। (यशपाल, वही, पृ. 92)

गदर आंदोलन के शहीद करतार सिंह सराबा भगत सिंह के प्रमुख प्रेरणा स्रोतों में से एक थे। भगत सिंह ने सार्वजनिक रूप से उनके शहादत दिवस को ब्रैडला हॉल में मनाया था। वहाँ करतार सिंह के चित्र का अनावरण किया गया था। यशपाल लिखते हैं–'यह उत्सव एक प्रकार से नौजवानों को सशस्त्र क्रांति की चेष्टा में सम्मिलित होने का निमंत्रण ही था। उत्सव का अनुष्ठान बड़े हृदयस्पर्शी ढंग से किया गय। भगत सिंह ने शहीद करतार सिंह का छोटा–सा चित्र खोज निकाला था। उस चित्र के आधार पर करतार सिंह का एक बहुत बड़ा चित्र भगवती भाई ने अपने खर्च से बनवाया था। चित्र पर खूब श्वेत खद्दर का एक पर्दा लटका दिया गया था। दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी ने अपनी अंगुलियों से रक्त निकालकर इस पर्दे को छीटों से रंग दिया था। इस अवसर पर मुख्य भाषण भी भगवतीचरण ने ही दिया था।' (वही, पृ. 92) यह शहादत दिवस एक अनोखा आयोजन था। एक शहीद अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य के एक शत्रु का बलिदान दिवस मनाना मायने रखता था।

भगत सिंह और उनके साथियों ने नौजवान भारत सभा के अतिरिक्त लाहौर विद्यार्थी संघ की भी स्थापना की थी। यह नौ.भा.स. की ही सह संस्था थी, जिसका उद्देश्य सीधे विद्यार्थियों से जुड़ना एवं नवयुवकों की तलाश करना था, जो केवल देश के लिए सोचें और देश पर जीवन का बलिदान कर सके। विद्यार्थी संघ ने तत्कालीन राजनीति में पर्याप्त भागीदारी की, विशेष रूप से 30 अक्टूबर 1928 का जब साइमन कमीशन लाहौर आया था, उस समय

विद्यार्थी संघ ने साइमन कमीशन के विरुद्ध होनेवाले प्रदर्शन में खुलकर भाग लिया था। लाठीचार्ज में अनेक विद्यार्थी घायल हुए थे। यह एक ऐतिहासिक प्रदर्शन था, जिसमें लाला लाजपत राय पर भी प्रहार हुआ था, जिसके कारण 17 दिसम्बर, 1928 को उनका देहांत हो गया था।

मनोरमा दीवान के अनुसार नौ.भा.स. ने लाहौर षड़यंत्र केस के पाँच अभियुक्तों का बयान लिया था। इस बयान में यह कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार सहित संसार की सभी सरकारें शोषण करनेवाली हैं एवं उनके पास पराधीन देशों को तबाह करने के भी साधन हैं। सभा की ओर से यह बयान प्रकाशित करा कर सारे देश में बाँटा गया था। सरकार ने इस बयान के लिए अहसान इलाही को जिम्मेदार माना, जो नौ.भा.स. के सदस्य थे।

नौजवान भारत सभा ने जेल में भगत सिंह और उसके साथियों द्वारा किये जानेवाले अनशन के दौरान भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यह अनशन राजनीतिक बंदियों के अधिकारों को लेकर हुआ था, जिसकी अवधि बहुत लंबी रही। इस अवधि में बंदियों को बलात् पान कराने के प्रयत्न होते रहे। जवाहरलाल नेहरू से लेकर गणेश शंकर विद्यार्थी और मुस्लिम पत्रों ने भी इसकी आलोचना की थी। उन्हीं दिनों लाहौर की सड़कों पर कांग्रेस और नौ.भा.स. के युवकों ने अनेक बार सम्मिलित जुलूस निकाले, जिसमें हजारों की संख्या में लोग सम्मिलित होते थे। 14 जुलाई के ऐसे ही एक जुलूस पर लाठीचार्ज हुआ। 19 जुलाई के जुलूस पर भी लाठीचार्ज हुआ, जिसमें धन्वन्तरी और नौ.भा.स. के अन्य कई सदस्यों को इतना पीटा गया कि वे बहोश हो गये।

नौ.भा.स. के संस्थापकों को इस सत्य की पूरी समझ थी कि किसी भी देश और समाज के लिए सांप्रदायिकता से बढ़कर हानिकारक और कुछ नहीं हो सकता। सैन फ्रांसिस्को में गठिन 'गदर पार्टी' के विधान में भी धर्म के लिए कोई स्थान नहीं था। धर्म को नितांत व्यक्तिगत विषय माना गया था। ठीक उसी प्रकार नौ.भा.स. ने भी अपने घोषणा पत्र में कहा–'धार्मिक अंधविश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। हमें उनसे हरहाल में छुटकारा पा लेना चाहिए। आमतौर से सभी संप्रदायों के लोगों का संकुचित दृष्टिकोण आदि बातों का विदेशी शत्रु हमेशा लाभ उठाता। यह घोषणा हमारे देश के लिए भविष्यवाणी बन गयी। सचमुच अंग्रेजों ने सांप्रदायिकता का लाभ उठाकर देश को विखंडित कर दिया।

भगत सिंह साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित थे। अतः उनके जीवन धर्म को कोई स्थान नहीं था। परिणामस्वरूप नौ.भा.स. में भी धर्म को काई महत्व नहीं था। इसे सभी धर्मों के नौजवानों का सहयोग मिला। इस धर्मनिरपेक्षता को मजबूती प्रदान करने के लिए सामाजिक सहभोजों का आयोजन किया जाता था। भगत सिंह के साथी यशपाल लिखते हैं कि इन भोजों का उद्देश्य स्वादिष्ट भोजन परोसना नहीं था। पत्तलों और सकोरों में खिचड़ी या पुलाव और मट्ठा परोसा जाता था। ''सभी संप्रदायों, वर्णों और जातियों के लोगों को इनमें सम्मिलित किया जाता था और सब लोग एक साथ बैठकर एक दूसरे के हाथ से परोसा हुआ भोजन करते थे। एक अवसर पर तो कुछ दुस्साहसी नवयुवकों ने हलाल... और झटके का मांस ही देश में पकाकर गोश्त रोटी का भोज कर डाला, जिसमें मुसलमान, हिन्दू और सिख नौजवान काफी संख्या में सम्मिलित थे। यह गनीमत रही कि रूढ़िवादी से परेशान यह नवयुवक गाय और सूअर तक नहीं पहुँचे।'' (यशपाल, वही, पृ. 93)

यशपाल नौजवान भारत सभा के एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर इंगित करते हुए लिखते हैं–''नौ.भा.स0 सांप्रदायिक एकता को राजनैतिक कार्यक्रम का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग समझती थी, परन्तु इसकी दृष्टि में सांप्रदायिक एकता का मार्ग कांग्रेस के कार्यक्रम की तरह सभी सांप्रदायिक धारणाओं को फुसलाना नहीं था। अर्थात् हम लोग 'अल्ला–ओ–अकबर', 'सत् श्री अकाल' और 'वन्दे मातरम्' के नारे एक साथ नहीं लगाते थे। हमारे केवल दो नारे थे–'इन्क्लाब जिंदाबाद' और 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद।' (यशपाल, वही, पृ. 93)

सभा की ओर से एक और विचित्र लेकिन क्रांतिकारी कदम उठाया गया था। वक्ताओं को सार्वजनिक सभाओं में सभी धर्मों की कमियों के विषय में बोलना होता था। वक्ता को स्वयं अपने धर्म की आलोचना करनी होती थी। ऐसी ही एक सभा में इस्लाम की आलोचना करनेवाले एक युवक पर उसका सहधर्मी छुरा निकालकर उसका कत्ल करने के लिए दौड़ पड़ा। पकड़े जाने के बाद उसने यह तर्क दिया कि कोई भी धर्मावलंबी यदि इस्लाम की आलोचना करे तो मैं धार्मिक सहिष्णुता के नाते सहने के लिए तैयार हूँ; परन्तु मुसलमान के मुख से इस्लाम की आलोचना सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ।'' इसके बावजूद व्याख्यान पूरा किया गया। क्रांतिकारी इतिहासकार मन्मथनाथ गुप्त का विचार है कि ''भा.नौ.स. ने एक बहुत अच्छी दिशा में कदम रखा था कि ''ईश्वर अल्ला तेरा नाम, सबको सन्मति दे भगवान' का गीत गाने से सन्मति नहीं आती, बल्कि बुद्धिवादी स्तर पर खड़े होकर सारी चीजों पर यहाँ तक कि धर्म, अवतार और पैगम्बरों पर विचार करने से असली धर्म–निरपेक्षता आ सकती है।'' (मन्मथ नाथ गुप्त 'भगत सिंह और उनका युग', पृ. 124) यही कारण था कि गांधीजी की तमाम सद्भावना और मुसलमानों को तुष्ट करने की नीति के बावजूद उसके प्रथम जन आंदोलन के बाद ही हिन्दू–मुस्लिम दंगों की झड़ी लग गई थी। दंगों का यह सिलसिला न आजादी पूर्व रुका था, न स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रुक सका।

भगत सिंह और भगवतीचरण वोहरा ने अप्रैल 1928 को अमृतसर में होनेवाली सभा के लिए नौ.भा.स. का एक घोषणा पत्र तैयार किया था। यह एक लंबा घोषणा पत्र था। स्थानाभाव के करण उसको उद्धृत नहीं किया जा सकता। उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं–

1. जिन्हें आजाद होना है, उन्हें स्वयं चोट करनी पड़ेगी। नौजवानों जागो, उठो, हम काफी देर सो चुके।
2. हमने केवल नौजवानों से ही अपील की है; क्योंकि नौजवान बहादुर होते हैं, उदार एवं भावकु होते हैं...क्योंकि सुधार हमेशा नौजवानों की शक्ति, साहस, आत्मबलिदान और भावात्मक विश्वास पर ही प्राप्त हुए हैं–ऐसे नौजवान जो भय से परिचित नहीं हैं।
3. धार्मिक अंधविश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। उनसे हरहाल में छुटकारा पा लेना चाहिए।
4. हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जो बगैर उम्मीदों के, निर्भय होकर लड़ने को तैयार हों और बगैर सम्मान के, बगैर आँसू बहानेवालों के और प्रशस्ति गान के मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हो।...हमारी असली लड़ाई हमारी अयोग्यताओं के खिलाफ है।
5. घोषणा पत्र में आगे घोषित किया गया कि नौ.भा.स. का उद्देश्य है–''क्रांति जनता द्वारा, जनता के हित में।...उसका अर्थ होगा नयी व्यवस्था का जन्म–एक नयी राजसत्ता।''
6. युवकों के सामने जो काम है, वह काफी कठिन है और उनके साधन बहुत थोड़े हैं। ... उन्हें अपने दिल में यह बात रख लेनी चाहिए कि 'सफलता मात्र एक संयोग है, जबकि बलिदान एक नियम है।'...नौजवान दोस्तो! इतनी बड़ी लड़ाई में अपने आपको अकेला पाकर हताश मत होना। अपनी शक्ति को पहचानो। अपने ऊपर भरोसा रखो।
7. याद रखिए कि ''राष्ट्रनिर्माण के लिए हजारों अज्ञात स्त्री–पुरुषों के बलिदान की आवश्यकता होती है, जो अपने आराम व हितों के मुकाबले तथा अपने एवं अपने प्रियजनों के प्राणों के मुकाबले देश की अधिक चिंता

करते हैं। 6.4.1928, वन्दे मातरम्।

उपर्युक्त घोषणा पत्र में नौजवानों को हर तरह से देश के स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ने के लिए प्रेरित किया गया था। जागो, उठो, बढ़ो, युद्ध करो, अपनी शक्ति को पहचानो, परिणाम क्या होगा, नहीं ज्ञात है, तुम्हें केवल संघर्ष करना है। नौ.भा.स. 1930 के बाद भी कुछ वर्षों तक सक्रिय रही। 1934 में पंजाब सरकार ने उसे गैर कानूनी घोषित कर दिया। निस्संदेह भगत सिंह और भगवती चरण वोहरा का यह प्रशंसनीय प्रयास था। यह प्रयास 'गुप्त संगठन का आधार था'। यह भी सत्य है कि 'भगत सिंह से पहले प्रचार तथा जन संपर्क की दिशा में इतना बड़ा तथा संगठित कदम क्रांतिकारियों ने कभी नहीं उठाया था (शिव वर्मा–'संस्मृतियाँ', पृ. 22)'' भगत सिंह के समकालीन साम्यवादी नेता मुजफ्फर अहमद ने सभा के विषय में लिखा था कि ''भारत के इतिहास में अन्य कोई भी युवक संगठन नौजवान भारत सभा की तरह इतनी अधिक राजनीतिक प्रसिद्धि नहीं प्राप्त कर सका था।'' मुजफ्फर अहमद का यह भी विचार था कि यदि फांसी और कालापानी की सजाओं के कारण क्रांतिकारी आंदोलन के प्रमुख नेताओं को राजनीतिक परिदृश्य से अदृश्य न होना पड़ता, तो कालांतर में नौ.भा.स. कांग्रेस की प्रबल प्रतिद्वंद्वी के रूप में सामने आ सकती थी।

कविता

अब और नहीं

सुभाषचन्द्र झा,से.नि. बिहार प्रशासनिक सेवा,
सरकार के विशेष सचिव, क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार,
भागलपुर प्रमंडल, भागलपुर– 812002 मो0–9431208428

नयनों के दर्पण में
प्रतिबिम्बित
दो आत्माओं की प्रणय अभिलाषा
निगाहें ताकतीं
एक–दूजे को इस तरह
चेहरे के हावभाव
मुंदती आँखें, लरजते होंठ
कुछ कहना चाहते हों जैसे
बादलों–सी जुल्फों की झुरमुट
खिला चाँद–सा चेहरा
झील–सी गहरी नशीली आँखें
इन्द्रधनुषी ख़्वाबवाली सपनीली
रेशमी गेसुओं का घटाटोप अंधेरा
अंधड़, बारिश, ओले की
आशंका में
घनघोर प्रेमावेश में
उनींदे सूर्य पर
शबनम छिड़कती रूपराशि
कश्ती खेने के लिए
भंवर का सिलसिला चलाती
समन्दर तन–मन
उच्छृंखल विकल अस्थिर लहरें
भाववेश में उठती–गिरतीं
तोड़कर वर्ज़ित सीमाओं का पाश
पछाड़ खाकर
तट पर थक पसरतीं
बूंद–बूंद आलिंगन करके
ढलान से फ़िसलकर
गहराई में उतरकर
समाती कश्ती
कदम ताल मिलाती
लय–सुर में छंदबद्ध
देहगंध की अपरिचित
आदिम महक में
बज़ उठती वीणी के तार
चांद कुछ नीचे सरकता
मदहोश बेसुध
आतुर रसपान
और यही
प्रेम का सृजक भी
आपस में
फ़्यूल इन फायर...
आती है जब यौवन पर
बरसाती नदी
मछली तक नदी–प्रवाह की
पतझड़ में निर्वस्त्र
अंग–प्रत्यंगों के
उन्नत स्पर्श की
मादक तरंगें
सिहरनें
पर स्वयं के भावों
को स्पष्ट नहीं होने देना
भावों को समझ लेना
हलचल का अहसास करना
संपर्क और संसर्ग
स्पष्ट असर परिलक्षित
धीरे–धीरे
चाहत में पिघलाहट
भींगते पल की चाहत में
आंच–तपन
तपती भट्ठी में शीशे का पिघलना
देहों का आपस में सिमटना
फ़िर ... न कोई बंधन
न कोई ठहराव
सिर्फ आदिम स्त्री
और आदिम पुरुष
आपस में घुले–मिले
गड्डमड्ड एकाकार
केवल धड़कनें
सांसें हरकतें
दरम्यां के टूटते
सारे फ़ासले
परस्पर समर्पित
और पूरक
सागर में डूबकर
कोई अमृत–मंथन कैसे करे
सिलवटों की सिहरनें
भीतर में कैसे रखे
सावन की घटा
सांसों की सरगम
दिल की धड़कन
बेताब हो जब
बिखरती है खुशबू
बरसता है बादल तभी
मूसलाधार
और बारिश इतनी तेज कि
सब कुछ बह जाए, दह जाए
विपरीत दिशा में
पहचान कर हवा का रुख़
भांप कर
आनेवाले आंधी–तूफान
नदी के चेहरे के
उतरते–चढ़ते हाव–भाव
फिर उठता है बवंडर
गरज़ता है समन्दर
उमड़ता–घुमड़ता है बादल
हहराती नदी की तरह
अपना रास्ता बना लेती है
मछली
जैसे पानी अपनी सतह
स्वयं ढूढ़ लेता है
उद्याम लहरों के संग
जब हिचकोले खाती है नाव
मेघ उतरता है सपनों में
और आसमान रीत जाता है
प्रेम किसी से
और नज़दीकियाँ किसी से
धूप ठंढी कैसे हो
धरती पर बरसात कैसे हो
दिन में रात कैसे हो
प्यास से अभिशप्त
तपते रेगिस्तान पर
झूम कर
कैसे बरसे बादल
याद कर
मन में कोई ठहरी हुई
मधुर याद, कोई बात
भूल कर पल
अधीर सा
यह कि आंधी की आहट है
हाथों में हाथ डाल
ऊंगुलियों से खेलना
धड़कनों से धड़कनें जोड़
साथ–साथ बहना
साथ–साथ सुलगना
साथ–साथ थमना
घातक बारिश के बाद
खुलते आसमान में
पनसोख़ा प्रकट होना
धवल चंद्रिका–सी ख़िलावट
समर के ताने–बाने
महायुद्ध अपने चरम पर
विस्तारित गुलाबी आँखों से
कनखियों से
चोरी–चोरी निहारना
उच्चतम शिखर पर
भीगती–गूँथती क्रिया–
प्रतिक्रिया
तपते सूरज को
अपने आंचल में समेटकर
राहत पहुँचाती
ज़ादू की झप्पी–सा
एक मादक समर्पण
संपूर्ण तन–मन को
सराबोर करता
बिज़ली दौड़ाता
खुले उघरे पृष्ठ पर
श्लथ पस्त निस्पन्द
दो घड़ी का मात्र साथ
काश! नींद के हिस्से में
कुछ रातें और आ जातीं
गुलाब की पंखुड़ियों का रंग
जब लुभाता है
दिल का हर लफ्ज
जैसे ग़ज़ल बन जाता है
...अब और नहीं.....
फ़्यूल इन फ़ायर।

कहानी

दान–दहेज

तुलसी तिवारी
विलासपुर, छत्तीसगढ़
मो. : 9907176361

अच्छा घर–बार, धन–दौलत, नौकरी–चाकरी, छोटा परिवर, एक शब्द में कहें तो जैसा वह सोचा करती थी, वैसा ही सब कुछ। राकेश इंजीनियर है, माता–पिता नौकरीवाले, बहन दोनों ससुराली, उसने अपने जानिब सब कुछ पता लगाया था। आज के युग में भी राकेश हर प्रकार के नशे से दूर था। माता–पिता से दूर न जाना पड़े, इस विचार से अपना काम प्रारंभ किया था। जरा मन पीछे हटा, एक साथ रहना यानी हिमानी के ऊपर जिम्मेदारी का दबाव। रोक–टोक कौन–सी बाधा थी?शादी के साल भर बाद ही उसने इससे भी बड़ी बाधा को नहीं उखाड़कर इतनी दूर फेक दिया था कि दुबारा कभी उसकी हवा तक न लगी। आकाश क्या कम मातृभक्त था?पिता के न रहने पर बस माँ–बेटे ही तो रह गये थे परिवार के नाम पर। दोनों में एक दूसरे के प्राण बसते थे; लेकिन उसने पार न किया इतनी बड़ी बाधा। वैसे ही हिमानी भी साल के अंदर ही या तो अपने घर में अकेली अपने पति के साथ रहती या अपना घर बना लेते दोनों।

पर ये क्या हो रहा है?यहाँ पर लड़की पसंद करके, कुलगोत्रा, राशि, वर्ण, नाड़ी–योनि, पूछ–पूछाकर गये, कुंडली के छत्तीस गुण मिलते थे। हिमानी के मुरझाये चेहरे पर प्रसन्नता की चमक देखी थी उसने।

माँ मेरे जाने पर घर कैसे चलेगा?उसने उदास होकर पूछा था, सोचे भी क्यों नहीं?दस वर्ष से कमाकर घर चला रही है। शिवानी और भवानी की पढ़ाई पूरी करके चार पैसे कमाने के लिए हाथ–पैर मार रही है। किसी प्रकार अपना खर्च निकाल ही लेती है। आधारस्तंभ तो हिमानी ही है। आकाश को घर बैठे लगभग दस–ग्यारह वर्ष हो गये, जो कुछ मिला, उससे यह एक घर खरीद लिया था। थोड़ा–बहुत पेंशन है, चल रही है गाड़ी। तीनों बेटियाँ बेहद समझदार हैं। उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति का अंदाजा भली भाँति है। मरे लड़केवाले, माने तो घर बेचकर करनी होगी शादी। कैसी तो हो गई हिमानी, अठारह–बीस की उम्र में जैसे फूल खिलते थे उसके चेहरे पर। आँखें हँसती रहती थीं जैसे कोई मोहक सुगंध झरती रहती थी उसकी देह से। धीरे–धीरे बदल गई वह। अब तो सदा गंभीर रहती है। ऑफिस से आई कमरे में घुसी। न अधिक बातचीत न कोई फरमाइशं जो कुछ मिला, खा–पी ली। बेचारी! अपनी उम्र में किसे नहीं लगता। उसकी तो तीनों बेटियाँ तीस के पार हो चुकी थी। बेटे का मुँह देखने की चाह में तीन देवियाँ आ गयीं। उसके बाद तो न जाने कैसे स्वयं ही पूर्ण विराम लगा था। वह तो अभी दो साल पहले तक प्रतिमाह अपने शरीर में कुछ अलग प्रकार का परिवर्तन खोजा करती थी, अब तो हो गया सब कुछ। सब मनसूबा बेकार निकला। फोन आ गया–

''आपकी लड़की तो हमें पसंद है; परन्तु हम ऐसे घर से लड़की लाना नहीं चाहते, जिस घर में दादा–दादी न हो, हमें माफ कीजिएगा।'' कटे पेड़ की तरह बिस्तर पर गिर पड़ी थी वह, ऐसा पहली बार हुआ हो यह भी तो नहीं है। तीसरी बार है उसकी शादी का लगते–लगते टूट जाना।

अजीब बदलाव आ रहा है लड़केवालों में। पहले दान– दहेज, सुंदर पढ़ी–लिखी लड़की, बारातियों का स्वागत–सत्कार की बात होती थी। अब घर में दादा–दादी! चाहे अपने माँ–बाप के साथ न रहते हो। सब बहाना है, अवश्य किसी दुश्मन ने शादी काट दी है।

हिमानी के दादा को तो वह नहीं ला सकती, लेकिन दादी। उसे ला सकती थी, पता नहीं अब वहाँ रहती है या नहीं। वह कहाँ आएगी?जब इतने दिनों में कभी नहीं आई, न खोज खबर ली तो अब क्या रहेगी आकर?सुनकर उसे तो खुशी ही मिलेगी। बेटे को देखकर शायद पिघल जाए। कोशिश करनी पड़ेगी। लोगों की सोच नहीं बदली जा सकती। सोच ये जिस परिवार में सयानों का स्थान रहता है, उस परिवार की लड़कियाँ अपनी ससुराल में भी बुजुर्गों की सेवा करती है, उनके संस्कार में होता है। हालाँकि यह सिद्धांत पूर्णरूपेण सच नहीं है, उसकी माँ ने तो पगली सास की अंत तक सेवा की। क्या मजाल जो बाहर निकलने दे?चाहे वह कितना चीखे चिल्लाये, घर गंदा करे या गालियाँ दे, वह सब सहती थी। लोग कहते–पागलखाने भेज दो। परंतु वह नहीं मानी, घर पर ही दवाई होती रही, बहुत कुछ ठीक भी हो गयी थी दादी।

परन्तु उसे तो न जाने क्यों आकाश और अपने बीच सास बर्दाश्त ही न हुई। पहले दूसरे दिन से ही जल में तैरती काई की तरह किनारे करना शुरू कर दिया था उसे। पहले–पहले शर्मिन्दा–सा आकाश बगलें झाँकता रहता, उसकी प्यारी पत्नी सारिका फूट–फूटकर रोती, माँ गुस्से से उबलती, वह किसे संभाले, किसे छोड़े?फिर उसने डांटकर माँ को चुप कराना और सारिका को सान्त्वना देना प्रारंभ किया था। उसकी दृष्टि में माँ का अत्याचार बढ़ता ही गया था। सारिका के आँसू झूठे नहीं हो सकते थे न?

'माँ यहाँ लेटी क्या कर रही हो?'–वह हिमानी की आवाज सुनकर चौंक उठी। वह आ गई है अपने काम से। आज कल किसी कंपनी में काम कर रही है। आते ही एक बार माँ को अवश्य पूछती है। 'माँ! क्या हुआ?'

वह उठी थी, बेटी को एक गिलास पानी देना उसका फर्ज बनता है। उसके मुँह से कुछ नहीं निकल सका। 'क्या हुआ माँ, बोलो न?लड़केवालों का फोन आया था?' वह माँ का चेहरा देख परेशान हो उठी।

कहते हैं जिसके घर दादा–दादी न हो, उस घर से लड़की नहीं लेंगे। बताओ भला, जिसके घर दादा–दादी न हो, उसकी लड़की क्या कुँआरी रहेगी?

'चिन्ता मत करो माँ! जहाँ भाग्य होगा, वहाँ शादी लगेगी ही।' उसने सयानों की तरह समझाया। 'वैसे माँ! हमारी तो दादी थी न?' उसका प्रश्न सारिका को हिला गया।

'थी बेटी! हो सकता है अभी भी हो। उसके मन में कोई खोट न होता तो क्या घर छोड़कर चली जाती?लगभग 28 साल हो गये घर से निकले, कभी बेटे की सुधि नहीं ली। वैसे यदि वो घर में होती तो और कोई रिश्तेवाले घर की ड्योढ़ी न चढ़ते।' वह हिमानी के लिए चाय–पानी ले आयी थी। उसने देखा भी नहीं माँ की ओर। बहुत रोना–धोना मचायी।

'तुम्हारी गलती की सजा मुझे मिल रही है माँ! तुम्हें बना के रखना था न अपनी सास से?अब हम तीनों बहनें कहाँ तो किसके घर बैठें जाकर?' वह रोये जा रही थी।

'शांत हो जा बेटी! जिन्होंने तुझे ठुकराया है, वे बड़े अभागे हैं। उनकी सोच की बलिहारी है। उन्हें बहू नहीं नौकरानी चाहिए, जो जीवन भर उनका गू ढोती रहे। अच्छा हुआ जो उन्होंने मना कर दिया, वर्ना जीवनभर का रोना हो जाता।' सारिका अब दूसरे ढंग से समझा रही थी हिमानी को।

और भी अच्छे–अच्छे रिश्ते आये, किन्तु बात न बनी। नाना–नानी, दादा–दादी की खोजबीन में यह तो नहीं कहा जा सका कि लड़की की दादी अब इस संसार में नहीं है?सब कुछ सुनते हुए आकाश चुप रहे। जब सारिका एकदम

से झल्ला गई, तब धीरे से कह दिया।

'उस दिन भी तुम्हारी ही मन की चली थी, जब माँ रोती हुई 10 बजे रात को घर से निकली थी। मैं कुछ कर सका था क्या?तुम तो हाथ में मिट्टी तेल का डिब्बा लेकर खड़ी थी–यह घर से निकले या इस समय जल मरूँगी, फिर रहना जेल में माँ बेटे एक ही संग। हम तो लाचार हैं तुम्हारी योजनाओं के आगे। वह और जल–भुनकर राख हो गयी थी। उसे पता ही न चला था कि उसका पति मन में उसके प्रति ऐसी भावना रखता है।

'बताओ पापा! बेटे होकर कभी खोजे दादी को?माँ तो परकोठिया थी, आप तो उनके बेटे थे?' हिमानी ने कटघरे में ले लिया था उसे।

पता क्यों नहीं लगाया?इसी शहर में राजेन्द्रनगर में डॉक्टर बलदेव के यहाँ रहती है। वे लोग उसे बहुत मानते हैं, कभी–कभी मिलता हूँ तो गले लगाकर पूरे टाइम रोती रहती है।

'अच्छा तो इतना बड़ा धोखा किया तुमने मेरे साथ। कभी हवा तक नहीं लगने दी तुम उसके बारे में कुछ जानते हो, उसके सारे कर्म भूल गये?शर्म नहीं आती है उनका बेटा कहलाने में?' सारिका नागिन–सी बलखा गई।

हाँ, आती है शर्म बेटा कहलाने में, मैं ऐसा बेटा हूँ, जिसने अपनी माँ को घर से निकालकर परायों के घर आश्रय लेते देखा है, कुछ न कर सका मैं। जेल जाने से डरता था और तुम्हारे हाथ में तो हमेशा.....?आकाश में जरा व्यंग्य से कहा।

'पापा! चलिये, हम दादी को लेकर आयेंगे। बात शादी की नहीं है, हमें अपनी दादी चाहिए। माँ यदि नहीं मानती है, तो हम तीनों भी घर छोड़कर निकल जायेंगी।' हिमानी की आवाज में दृढ़ता थी।

हम सब मर जायेंगे तो भी नहीं झुकेगी। सारिका ने हारे हुए स्वर से कहा।

पापा! हम कल चलेंगे दादी से मिलने?हिमानी ने अपना फैसला सुनाया जैसे।

माँ सबसे पहले निकलकर ऑटो में बैठ जाना। वर्ना अब तुम्हारे अकेले होने की बारी आ गई है।हिमानी का स्वर..तल्ख था।'राणो! तुम्हें मैंने बेटे से कम नहीं माना, भतार पाने के लिए इस तरह उतावली हो जाओगी, ये तो कभी सोचा ही नहीं था मैंने?' सारिका ने अपने दोनों हाथों से अपना सिर दबाया।

रातभर उसे नींद नहीं आई।लड़कियाँ कुँआरी नहीं बेवा जैसी दिखने लगी है।समय पर ही सब कुछ अच्छा लगता है। कहते भी हैं न वक्त पर गधे को बाप कहना पड़ता है। चलूँ पैर पकड़कर मना लूँ, नहीं तो लड़कियाँ बेहाथ हो जायेंगी, आ गई काम तो फिर वही रास्ता दिखा दूँगी। नहीं आयी तो ये ज्यादा चपड़–चपड़ कर रही हैं हमेशा के लिए चुप हो जाएगी। आदमी हारता अपनी कोख से ही है। मैं ही मूर्ख थी, जो जानते बूझते इन्हें संसार में ले आई इसलिए तो लोग बहा देते हैं नाली में, लगता जो कुछ लगता, आज ये दिन तो नहीं देखना पड़ता।वह पूरी रात सोचती रही।

जाते–जाते बड़ी उदार होकर माफ करती गई थी। अब समझ में आया उसने बड़ी होशियारी से मुझे श्राप दिया था।तुमने मेरे साथ जो भी किया, अपनी समझ से ठीक ही किया।तुम मेरे अरमानों का फल हो मैं तुम्हें माफ करती हूँ। भगवान करे तुम्हें ऐसे दिन कभी न देखने पड़े। अब समझ में आया उसका तात्पर्य था तू बेटे की माँ न बन सके, बेटा नहीं होगा तो बहू कहाँ से आएगी, फिर घर से कौन निकालेगा?उसी का श्राप फला है, वर्ना तीन में एक भी लड़का दे देते भगवान तो क्या ये लड़कियाँ इतना चढ़ पाती?वह अकेले में रोती रही थी।

हिमानी–शिवानी काम पर नहीं गई।हिमानी ने जल्दी से कुछ नाश्ता बनाया। आकाश और सारिका दवाई खाते हैं ब्लडप्रेशर की। वह तो एकदम शांत थी। तैयार हुई जैसे–तैसे, क्या कोई शादी में जाना है जो तैयार होकर जाय?खुदा ना खाश्ता यदि आ ही गई तो इस छोटे से घर में कहाँ रहेगी?नहीं–नहीं मैं भी तो सत्तर साल की होगी, पता नहीं, कौन–कौन–सी बीमारी हो गयी होगी, कहीं खाँसी हुई तो पूरा घर थूक–थूककर भर देगी।कैसे बोलेगी उससे इतने दिनों बाद, ऑटो में बैठ वह सोच रही थी।

राजेन्द्रनगर 15 किमी. दूर है शिवाजीनगर से।जब वे डॉ. बलदेव के शानदार भवन के सामने पहुँचे तो देखा कि एक युवक एक वृद्ध को साथ लिये धीरे–धीरे टहल रहा है लॉन में।

दरवाजे पर ऑटो से पाँच जन को उतरते देख वह गेट के पास आ गया था।सब एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे कि वृद्धा बोल पड़ी–आकाश! मेरा बेटा।उसने आगे बढ़कर आकाश को गले लगाया।उसकी ऊँचाई बहुत कम हो गयी थी, कमर झुक गयी थी, चेहरे पर झुर्रियाँ का साम्राज्य था, सिर के बाल बगुले के पंख जैसे हो रहे थे। आकाश की कमर से लिपटी वह रोने लगी थी जार–बे–जार।

मेरी तकदीर ही खोटी है बेटा! तुझे रोज–रोज देख भी नहीं सकती, कितने दिनों के बाद आया है इस बार। भूल ही गया था मुझे–अन्य लोगों की उपस्थिति की बात वह भूल गयी थी, ऐसा लग रहा था।

आइये न आप लोग अंदर।युवक ने अंदर बुलाया।

तीनों युवतियाँ एक साथ वृद्ध से लिपट गयीं। दादी–दादी! हम आपकी पोतियाँ! आपको लेने आयी हैं–हिमानी ने उसके झुर्रियों भरे माथे को चूमते हुए कहा।

मेरी पोतियाँ?हे भगवान! कहीं मैं खुशी से मर न जाऊँ?वृद्धा की स्थिति अजब–सी हो रही थी, एक बार हँसे, एक बार रोये।सभी आकर लॉन में पड़ी कुर्सियों पर बैठे।सारिका अबतक चुप थी।

'दादी! हमें कल ही आपका पता चला है और आज हम लेने आ गयीं, तैयार हो जाइए।' हिमानी चंचल हो रही थी।'अपनी माँ से पूछा बेटी?' वृद्धा ने धीमी आवाज में कहा।

'माँ जी! मुझे माफ कर दीजिए।मैं अपनी गलती की सजा भुगत रही हूँ।शादी नहीं हो पा रही है इनकी।लोग पूछते हैं कि इनकी दादी कहाँ है?आप घर चलिए।'सारिका ने वृद्ध के पैर पकड़ लिये।

युवक ने उनके लिए जलपान का प्रबंध किया। आगे–पीछे की बातें होती रहीं।

'ये मेरा बेटा सोमू है, डॉ. सोमनाथ, बहुत बड़ा डॉक्टर है, अपने पापा से भी बड़ा। जब मैं इस घर में आयी, यह एक वर्ष का था, इनके माँ–पिताजी डॉक्टर हैं, उन्हें रात हो या दिन जब मरीज आये, अस्पताल जाना पड़ता था। डॉ. साहब ने इसे पालने के लिए मुझे अपने घर में शरण दे दी, उन दोनों को मेरे हाथ का भोजन बेहद पसंद है।यह तो आज भी मेरे बिना नहीं रह पाता, देखो घर के सब लोग गर्मी की छुट्टी मनाने शिमला गये हैं और यह घर ही रुका है। ड्यूटी भी देख रहा है और मुझे भी।वृद्धा अब संभल चुकी थी।डॉ. सोमनाथ सब कुछ सुन रहा था।

'माँ जी! अब हमें इनकी नौकरी की आवश्यकता नहीं है।आपकी उम्र हो गयी है अब घर चलिए।'सारिका ने अधिकारपूर्वक कहा।

'आंटीजी! जरा सोच–समझकर बात कीजिए। ये मेरी दादी हैं नौकरानी नहीं। ये कहीं नहीं जायेंगी, आपलोग इज्जत के साथ वापस चले जाएँ।'–डॉक्टर की आवाज तल्ख हो उठी।

'दादी हमारी शादी नहीं हो रही है आपके बिना, क्या पूरी जिंदगी कुँआरी रहें, हमारी क्या गलती है?फिर मम्मी भी तो आपसे माफी माँग रही है न?' हिमानी उनसे फिर लिपट गई।

आकाश बेटा! तू मुझे लेने आएगा, मैं इसी दिन के इंतजार में जी रही थी, तुझे किसी भी रूप में मेरी आवश्यकता अनुभव हुई, यही मेरे लिए बहुत। मेरी प्यारी बहू मुझे बुलाने आई जीवन का अर्थ पूर्ण हो गया मेरे, उनका कंठ अवरुद्ध हो गया था, आँखों में अश्रुधार बह रही थी।

'दादी! सोचना भी मत जाने के बारे में, यदि गई तो मैं समझूँगा कि तुम्हें मुझसे प्यार नहीं, मेरी सेवा से तुम संतुष्ट नहीं।'

'तुमने कैसे सोच लिया कि मैं उस घर में वापस जाऊँगी, जहाँ से मुझे दुश्चरित्र ठहराकर निकाल दिया था।' वह चिट्ठी तुम्हीं ने रखी थी न बहुरानी! मेरे बेटे की नजरों में मुझे गिराने के लिए?मेरा दुर्भाग्य मेरे बटे ने भी नहीं सोचा कि भरी जवानी में वैधव्य का अभिशाप ढोते–ढोते इसे किस दु:ख से पाला?अधेड़ उम्र में...मैं प्रेम की पींगे बढ़ा सकती थी

'और किसी तरह इनके ऊपर कोई असर होता न देख मुझे यह सब कुछ करना पड़ा। मुझे माफ कर दीजिए माँ जी! सारिका अपराधी की तरह निगाहें झुकाए हुए थीं।

सुनो बहुरानी! तुम्हारे पाप की सजा अपनी पोतियों को नहीं दूँगी, इसलिए जब लड़केवाले आये, तब मुझे फोन कर देना, ड्राइवर छोड़ देगा मुझे। जरा भी पता नहीं चलेगा कि तुमने षड्यंत्र करके अपनी सास को घर से निकाल दिया है।परन्तु एक वादा करो बच्चियो!

'क्या दादी माँ?' तीनों एक साथ बोलीं।

'तुम तीनों ससुराल जाकर अपनी माँ का आचरण न दोहराओगी।'

लघुकथा

पापड़ बिना भोजन सूना

संजय वर्मा 'दृष्टि',
125 शहीद भगत सिंह मार्ग,
मानवर जिला धार (म.प्र.)

आम आदमी की थाली से गायब हो रहा पापड़, मसालेदार से ज्यादा मुनाफेदार हो गया पापड़। सीधे बाजार से खरीदने की आदत भागदौड़ भरी व्यस्ततम जिंदगी हो गई। पहले के जमाने में पापड़ बनाना हर घर में जारी था। पापड़ के आटे में नमक आदि का मिश्रण अनुपात किसी बुजुर्ग महिला से पूछा जाता था। वहाँ उसकी सलाह को सम्मान भी दिया जाता था। पापड़ के आटे को तेल लगाकर घन (लोहे के हथोड़े) से पीटा जाता था। आस–पड़ोस की महिलाएँ अपने–अपने घर से बेलन–पाटले लेकर आती व एक दूसरे को सहयोग करने की भावना से हाथ बँटाती। पापड़ बेलते समय सुख–दु:ख की बातें आपस में बाँटा करती, इसमें मन की भावना व सहयोग को अच्छी तरह से समझा जाता था।

पापड़ के लोए (कच्चा आटा) भी चखने हेतु बाँटे जाते थे, बाद में पापड़ भी खाने दिये जाते थे; किन्तु आजकल तो हर घर में पापड़ का बनना कम होता जा रहा है। मशीनों से बने पापड़ बाजार से लाकर खाने का चलन है। कौन मगजमारी करे, घर में पापड़ बनाने की?लोग टी.वी. से ही चिपके रहते हैं। आस–पड़ोस कौन रहता है, ये भी लोग तरीके से नहीं जानते। भागदौड़ की व्यस्ततम जिंदगी में घरों में साझा प्रयासों के श्रम से निर्मित कई पाक कलाएँ भी अपना अस्तित्व धीरे–धीरे खोती जा रही है।

रोजगार हेतु आज अच्छे–अच्छे को पापड़ बेलना पड़ रहा है कि कहावत भी काफी मायने रख रही है; क्योंकि पापड़ बेलना मेहनत का कार्य है। पापड़ों के भी कई स्वाद होते हैं। चरका पापड़, मीठा पापड़, चने, मूँग, उड़द, मक्का, चावल, पंजाबी मसाला पापड़, चटपटा चना, चना लहसून, पापड़ कतरन, आम के रस को सुखाकर पापड़ आदि कई पापड़ों की बिरादरी है। अतिताभ बच्चन तो 'कच्चा पापड़–पक्का पापड़' के तेजी से बोलने के नुस्खे को काफी चर्चा में ला दिया थ। लोग इसे सही उच्चारण से तेजी से बोलने में आज भी गड़बड़ा जाते हैं।

शादी–ब्याह के पहले घरों में पापड़ बनाए जाने का भी चलन था। शायद ये शादी–ब्याह में सहयोग हेतु आस–पड़ोस से सहयोग लेने हेतु चर्चा का एक प्रयोग रहा हो। महँगाई के बढ़ने से जायकेदार पापड़ों से दूरियाँ भोजन में नहीं परोसे जाने से घट–सी गई है। पापड़ में औषधीय गुण भी होता है, जो स्वास्थ्य के लिए गुणकारी होते हैं।

कुछ महिलाएँ सब्जियाँ महँगी होने पर पापड़ की सब्जी बनाकर परिवार को पाककला के स्वाद चतुराई से रखा जाती है। उल्लेखनीय है कि सभी बेलनों में बेलन भी महिलाओं का अपनी बात मनवाने का अचूक शस्त्र संकेत स्वरूप शुरू से ही रहा है।

वास्तव में देखा जाए तो गाँव–शहरों के घरों में साँझा प्रयास से पापड़ बनाने का चलन कम सा हो गया है। आटा, मसाला, मजदूरी की लागत से बने पापड़ का बाजार भाव काफी ज्यादा होता जा रहा है। नतीजतन मध्यम वर्ग की थाली से पापड़ अब गायब–सा हो गया है। कभी खाने से पहले मसाला पापड़ का ऑर्डर करनेवालों की थाली में जब सादा पापड़ भी कम दिखाई देता है। अंधविश्वास को बढ़ावा देनेवाले अगर अपनी शक्ति से एक पापड़ भी तोड़ के दिखा दे तो लोग उनकी बातें मान जायेंगे। थाली में चावल, चटनी, दही, पापड़ भी थाली की शोभा बढ़ाते आ रहे हैं।

यदि पापड़ के शौकीनों पापड़ न दिखे तो वे अचरज में पड़ जायेंगे। पापड़ भले ही बाजार से खरीदकर लाये हो। पापड़ तो हर एक की पसंद होती ही है। पापड़ सबकी पसंदीदा खाने की चीज है। बाजार से पापड़ लेना ही पड़ता है। क्योंकि इंसान की जिंदगी भागदौड़ भरी हो गयी है। पहले के जमाने में मनोरंजन के भौतिक साधन नहीं थे। महिलाएँ पाककला को ज्यादा महत्व देती थी। समय अभाव के कारण बाजार से पापड़ खरीदकर खाते हैं, जो कि अच्छे होते हैं। खैर, देखा जाए तो महिला सशक्तिकरण से भी साँझा प्रयास के कार्य भी काफी मायने रखते हैं। इसमें सशक्तिकरण को बल मिलता है। आपस में विचारों के मिलने से समस्याओं के समाधान हेतु सहयोगात्मक भावनाएँ प्रबल होती हैं। वर्तमान में मोबाईल की लत सबको ऐसी लगी कि पापड़ बेलना दूर, मोबाईल पर पापड़ बनाने की विधि को देखकर ही संतुष्ट हो जाती हैं। इसमें बेचारे पापड़ का क्या दोष!

लघुकथाएँ

टूटती मर्यादा

सविता मिश्रा 'अक्षजा'
मो.–9411418621

'लो फिर शुरू हो गया झगड़ना। फिर माँ को पीटना।' पापा के कमरे में आती माँ के रोने की आवाज को सुनकर बेटे ने झल्लाहट में बोला।
'यही देखते हमलोग बड़े हो गये। बहुत हो गया अब, जाकर कहती हूँ पापा से।'
'नहीं दीदी! पापा फिर तुम्हें भी मारेंगे।'
'तुझे गाँधीजी के तीन बंदर बने रहना है तो बैठा रह।' कहकर बिजली–सी कमरे से बाहर हो गयी।
'तू जा बिटिया'–माँ ने बेटी को देखते ही रुँधे गले से कहा।
'आँख दिखा रही मुझे! बिटिया को यही शिक्षा दी हो।' कहकर पत्नी को एक तमाचा और जड़ दिया।
'बस करिये पापा!'
'तूम मुझे रोकोगी' कहते हुए पिता ने हाथ उठाया ही था कि बिटिया ने हाथ पकड़कर झटक दिया।
'माँ! तुम्हीं तो शिक्षा दी हो न कि अन्याय के खिलाफ बोलना चाहिए।'
'अच्छा! तो आग इसी ने लगाई है।' कहकर फिर से तैस में आगे बढ़े पिता।
'हम दोनों जवान हो गये हैं पापा! आप भूल रहे हैं, आप बूढ़े और कमजोर हो गये हैं। माँ भी पलटकर एक लगा सकती है, लेकिन वह रूढ़ियों में जकड़ी हैं, पर हम नहीं। क्रोध और आवेश से भरा स्वर कमरे में गूँज गया।
'चुपकर बेटा!' खुद की दी हुई शिक्षा अपने ही पति पर लागू न हो जाये, बच्चों के पास आकर माँ, उन्हें बाहर जाने को कहने लगी।
बेटी की हरकत से पिता आहत हुआ ही था कि बेटे ने भी चुटीले शब्दों में आहुति डाल दी। सुनकर पिता का चेहरा तमतमा गया।

सामने बिस्तर पर पड़े हुए अखबार में 'पत्नी के साथ घर में गर्लफ्रैंड रख सकते' हेडिंग देखकर बेटी ने हिम्मत बटोर पिता से कहा–'माँ को जिस कानून की धमकी दे रहे हैं आप, जाकर उन आंटी से कभी यही कहके देखिएगा। माँ के साथ आप जो करते हैं न, वही आपके साथ वह करेंगी।
शर्मिन्दगी के बोझ से पिता का सिर झुक गया।

'कानूनी आदेश का सहारा लेकर जो आप धौंस दे रहे हैं! माँ कानून की राह चली होती तो आप न जाने कब के जेल में होते। घरेलू हिंसा भी अपराध है पापा! वकील होकर भी आपको यह पता नहीं।' बेटा बिना पूर्णाहुति किये कैसे चुप रहता।

'चुप्प करो बच्चो! कानून का डर दिखाकर रिश्तों की डोर मजबूत नहीं हुआ करती है। हाँ, टूट जरूर जाती है।' कहकर रोने लगी मार खाने से भी ज्यादा तेज बुक्का फाड़कर।

पत्नी और बच्चों के मुख से निकले एक–एक शब्द हवा में नहीं, बल्कि पिता के गाल पर पड़ रहे थे। थप्पड़ पड़े बिना ही अचानक पिता को दोनों गाल पर जलन महसूस हुई, अपने गालों को सहलाता हुआ, वह वहीं रखी कुर्सी पर धराशायी हो गया।

2. तोहफा

डोरबेल बजी जा रही थी। रामसिंह भुनभुनाये–'इस बुढ़ापे में यह डोरबेल भी बड़ी तकलीफ देती है।' दरवाजा खोलते ही डाकिया पोस्टकार्ड और एक लिफाफा पकड़ा गया।

लिफाफे पर बड़े अक्षरों में लिखा था 'वृद्धाश्रम।'

रुँधे गले से आवाज दी–'सुनती हो बब्लू की अम्मा, देख तेरे लाडले ने क्या हसीन तोहफा भेजा है।'

रसोई से आँचल पोंछती हुई दौड़ी आई–'ऐसा क्या भेजा मेरे बच्चे ने जो तुम्हारी आवाज भर्रा रही है। दादी बनने की खबर है क्या?'
'नहीं अनाथ!'
'क्या बकबक करते हो, ले आओ मुझे दो। तुम कभी उससे खुश रहे क्या?' वृद्धऽ शब्द पढ़ते ही कटी हुई डाल की तरह पास पड़ी मूविंग चेयर पर गिर पड़ी।
'कैसे तकलीफों को सहकर पाला–पोसा, महँगे–से–महँगे स्कूल में पढ़ाया। खुद का जीवन अभावों में रहते हुए इस एक कमरे में बिता दिया।' कहकर रोने लगी।
दोनों के बीते जीवन के घाव उभर आए और बेटे ने इतना बड़ा लिफाफा भेजकर उन रिसते घावों पर अपने हाथों से जैसे नमक रगड़ दिया हो।
दरवाजे की घंटी फिर बजी। खोलकर देखा तो पड़ोसी थे।
'क्या हुआ भाभीजी? आप फोन नहीं उठा रही हैं। आपके बेटे का फोन था। कह रहा था अंकल जाकर देखिये जरा।'
'उसे चिंता करने की जरूरत नहीं है।' चेहरे की झुर्रियाँ गहरी हो गयी।
'अरे! इतना घबराया था वह और आप इस तरह। आँखें भी सूजी हुई हैं। क्या हुआ?'
'क्या बोलूँ श्याम! देखो बेटे ने...मेज पर पड़ा लिफाफा और पत्र की ओर इशारा कर दिया।
श्याम पोस्टकार्ड बोलकर पढ़ने लगा। लिफाफे में पता और टिकट दोनों भेज रहा हूँ। जल्दी आ जाइये। हमने उस घर का सौदा कर दिया है।
सुनकर झर–झर आँसू बहे जा रहे थे। पढ़ते हुए श्याम की भी आँखें नम हो गयीं। बुदबुदाये–'इतना नालायक तो नहीं था बब्लू।'
राम सिंह के कंधे पर हाथ रख दिलासा देते हुए बोले–'तेरे दोस्त का घर भी तेरा ही है। हम दोनों अकेले बोर हो जाते हैं। साथ मिल जाएगा हम दोनों को भी।' कहते–कहते लिफाफा उठाकर खोल दिया। खोलते ही देखा–रिहाइशी एरिया में खूबसूरत विला का चित्र था, कई तस्वीरों में एक फोटो को देख रुक गये। दरवाजे पर नेमप्लेट थी सिंहसरोजा विला। हाँ, हाँ जोर से हँस पड़े।
श्याम तू मेरी बेवशी पर हँस रहा है।
हँसते हुए श्याम बोले–नहीं यार, तेरे बेटे के मजाक पर। शुरू से शरारती है वह। मजाक!
देख जवानी में भी उसकी शरारत नहीं गयी। कमबख्त ने तुम्हारी बाल्टी भर आँसुओं को फालतू में ही बहवा दिया। कहते हुए दरवाजे वाला चित्र रामसिंह के हाथ में दे दिया।
चित्र देखा तो आँखें डबडबा गयीं।
नीचे नोट में लिखा था–'बाबा! आप अपने वृद्धाश्रम में अपने बेटे–बहू को भी आश्रय देंगे न! पढ़कर रामसिंह और उनकी पत्नी सरोजा की आँखों से झर–झर आँसू एक बार फिर बह निकले।

नवगीत :

जगदीश पंकज,
राजेन्द्रनगर साहिबाबाद,
गाजियाबाद, मो. 8860446774

गाँव में आकर रहे

दंश देती है अपरिचय का चुभन
हम शहर से
गाँव में आकर रहें

सुना था संबंध
समरसता भरे
तो मधुर सौहार्द बसते गाँव में
दाँत काटी
रोटियों का सच नहीं
देख पाए हैं किसी भी ठाँव में

नीम, पीपल और बरगद के तले
अब न कोई
बतकही आकर कहे

श्रेष्ठता के मानकों का
सच सभी
उच्च है कुलगोत्र के संदर्भ में
गाँवभर में आग की
अभिव्यक्ति के
भ्रूण भी पलते नहीं हैं गर्भ में

हैसियत भी जन्म से जुड़कर मिली
प्राण ने अपमान
मरघट तक सहे

जब सबल की लाठियाँ तय कर रहीं
न्याय या अन्याय को
हम और ही
धमकियों में कैद हैं निष्पक्षता
दीखता इंसाफ का
बस शोर ही
गाँव में भी बेटियों को मारकर
उड़ रहे चौपाल
तक पर कहकहे।
जर्जर वर्तमान के बर्बर संकेतों में
आओ कुछ व्यवहार टटोलें

आओ कुछ व्यवहार टटोलें

कुछ बाहर, कुछ अपने भीतर
खुलकर बोलें

कभी धूप से, कभी छाँव से
बातें कर लें
कुछ आपस में अंतराल की
कटुता हर लें
आपस के कुछ असह दाग भी
मिलकर धो लें

संवेदन के हाथ थामकर
पीड़ा बाँटें
नक्षत्रों तक घिरे धुंध को
मिलकर छाँटें
हर मायावी तंत्रजाल की
गुत्थी खोलें

मृत अतीत को नहीं आज के
सिर पर थोपें
बस भविष्य की क्यारी में
अपनापन रोपें
संभव सपनों में कुछ–कुछ
समभाव भिगो लें।

अर्थ से जब व्यर्थ होते

अर्थ से जब व्यर्थ
होते जा रहे
तब किसी संदर्भ को
आवाज दें
एक प्रश्नाकुल समय
बेचैन है
उत्तरों की खोज में है
पीढ़ियाँ
किस प्रगति को देखकर
मन मुग्ध है
चढ़ न पाये जब लरजती
सीढ़ियाँ

नाचती मतिभ्रष्ट जो
उद्दंड हो
नग्न पशुता को
कहाँ से लाज दें।

क्यों दिगम्बर हो रही
शब्दावली
कोश का मदहोश होता
आचरण
काल की निर्लज्ज संकर
पौध को
मिल रहा क्यों नित्य बदला
व्याकरण

राजपथ तकनीक में
उलझा हुआ
किस दिलासा को नया
अंदाज दें

उठ न जाये स्वर कहीं
आक्रोश का
हर प्रबंधन योजना में
व्यस्त है,
जो खड़ा सम्भ्रान्त
बन्दूकें लिये
वह पहरुआ दमन का
अभ्यस्त है
मूलधन जब गैर
निष्पादक हुआ
कर्ज का लाकर कहीं से
ब्याज दें।

कविताएँ

शिव डोयले,
झूलेलाल कॉलोनी, हरीपुरा, विदिशा,
(म.प्र.) मो. 9685444352

अच्छे दिन की आस

परिवार को
तसल्ली देते हुए
मैं बैठा हूँ
अच्छे दिन आने की
आस में
छट जायेगी
बुरे दिनों का कालिख
छट जायगा अंधेरा
उम्मीद का सूरज निकलने से
खुशियाँ होंगी
हमारी जेब में
पत्नियाँ परोस देंगी
रोटी के साथ
स्वाद का बढ़ जाना
अच्छे दिनों की पहचान होगी
स्त्री, बच्चे, बच्चियाँ
निर्भीक होकर जा सकेंगे
खेत, खलिहान, स्कूल, दफ्तरों में
बच्चे खेलते–खेलते
कह उठेंगे
अच्छे दिन हमेशा ऐसे ही
बने रहें
स्वच्छ भारत बनाने को
झाड़ दिया जाएगा
फैला हुआ भ्रष्टाचार
मैं लिखने लगूँगा कविता
मुस्कुराती हुई
जिंदगी भर।

2. कविता साधना है

कविता का इस्तेमाल
किया जाना चाहिए
संतुलित नमक की तरह
कविता में हो
मिठास शक्कर की जगह
शहद की
कविता को बनाओ
नीम की तरह
दवा का काम करे
कविता को
कविता रहने दो
करे ऊर्जा का काम
कविता निकलकर
आ गई है
कोठे से, दरबार से
मत बनाओ
बाजारू
कविता
नहीं गाई जाए
किसी नेता के
जन्म दिन पर
और न पढ़ी जाए
शोक संवेदना पर
कविता को
मत परोसो
चुटकुलों के साथ
फुहड़ हास्य से
जिंदा रखना
दायित्व है हमारा
कविता
जलेबी तो नहीं है
खमीर उठाकर
आड़ी–टेढ़ी
बनाई जा सके।
कबीर की वाणी है
तुलसी की पूजा
मीरा का प्रेम
रसखान में
बसी है कविता
कविता

साधना है
तपस्वी का तप है
ऋषि–मुनियों का
जप है मंत्र है।

डॉ. राम शर्मा,
विभागाध्यक्ष अंग्रेजी,
जनता वैदिक महाविद्यालय बडौल,
बागपत, उत्तरप्रदेश

हम मानव हैं

हम मानव हैं
बैर विरोध मिटा के हर मानव मन से
दीप से दीप जला, मन का अंधकार हरें
हम मानव हैं
एक सूत्र में बँधा रहे यह सारा संसार
ऊँच–नीच के भेदों का बहिष्कार करे
हम मानव हैं
बीज ऐसे बोयें निष्ठा विश्वास के माटी में
प्रेम–प्रीति का वृक्ष सींच गुंलजार करें
हम मानव हैं
हर मानव से प्यार करे
दुख लेकर सुख शान्ति का व्यापार करें।

शिवानन्द सिंह
मेरठ, उ.प्र.
9412212255

'माँ'

माँ! तुम केवल शब्द नहीं हो
तुम अक्षर अनुप्रास
तुम जननी निरकेवल भाषा
तुम ममता का पत्र
तुम असीम नभ, एक अदिति हो
तुम समता का सत्र
तुम संवेदन, सहनशीलता
अवलोकन की प्यास

तुम पूजा का चौक चिरन्तन
तुम मंदिर का शंख
आसमान की किरण कौमुदी
तुम तोते का पंख
तुम आशा का मंत्र नियंत्रित
एक अडिग विश्वास

तुम कवियों को पहली कविता
तुम अगहन की धूप
तुम अन्तस् की गहराई का
प्रत्यय एक अनूप
तुम टंकित आचारसंहिता
अनुबंधी इतिहास
वेद–वाक्य तुम, श्लोक ऋचा हो
पन्ना पोथी पंथ
छन्दमुक्त नवगीत विधा हो
तुम पौराणिक ग्रंथ
तुम विशिष्ट तुम शिष्ट रहस्या
तुम व्याख्या तुम व्यास।

तरबूजों की माटी

साथ शहर में, अबतक रहता
'सुरजनछपरा' गाँव
ढहा–ढहाया डीह पुरनका
'कटहावाला' खेत
तरबूजों की माटी बलुई
पीपल पर का प्रेत
जेठी मकई का मोचाना
तली बबूली छाँव

भूगोलों के इतिहासों का
डाली झूला आम
टिटिहरियों की टिटिहा रोरी
दोपहरी का घाम
मूँजों से टोकरी बनाना
कुश्तीवाला दाँव

कविताएँ

मंजु गुप्ता
नवी मुम्बई
मो0–9833960213

हे प्रियतम युद्ध की प्रलय लीला

जीवन–बेला में प्रियतम
सूर्यग्रहण होते देखा
घनघोर अंधकार छाते देखा
राहुग्रस्त हुआ विश्व आज
ऐसे अंधकार के क्षणों में
स्वर्णबेला प्रकाशित होने का
कौन दे सकता है प्रिय! बुलंद उद्घोष
मात्र कवि, साहित्य सर्जक ही
नयी चेतना साहित्य की
जगा सकती भावों को
क्या कोई भुला पाया
व्यास, नानक, तुलसी, सूर को
जिनके मूल्यों की संस्कृति ने
भाईचारा, प्रेमशक्ति, शान्ति
और प्रभु भक्ति का दिया अमर संदेश
विश्व में उमड़ते युद्ध के बादल
आतंकवाद का जहरीला फन
अस्त्र, शस्त्र, बम, बारूद को
विध्वंस करा दो, शमन करा दो
भक्ति गीतों, काव्य–रचनाओं का
अलख जगा दो।
विश्व में धधक रही युद्ध की चिंगारियाँ
ग्रसित हुआ आज सारा संसार
भौतिकता, अनैतिकता, हिंसा का
चढ़ गया आवरण
मग्न हुआ अमानवीयता में मानव
प्रियतम क्या
महावीर, अशोक, बुद्ध की शांति
और गांधी की अहिंसा–प्रेम से
युद्धों की वैराग्य संधि हो नहीं सकती
युद्ध के बाद का शांति–निर्माण
युद्ध होने से पहले सृजन करो
प्रियतम! तुम्हारा बीज मेरी कोख में पल रहा
जब अंगुली पकड़कर नस्ल तुम्हारी चलेगी
क्या कहकर उसको दिलासा दूँगी
उससे दिलवाऊँगी
क्या तुम्हारी श्रद्धांजलि

महासंग्राम

बारिश, बाढ़, तूफान
लाए कुदरती क्रोध कहर
सड़कें, नाले बनी नदी तालाब
नदियाँ प्रलय मचातीं
आक्रोशित समुद्र में छाया ज्वार ही ज्वार
मर्यादाओं को लाँघ
सुनामी बन
तटबंध को तोड़ के
घुसपैठिया बना घुसा
हर स्थान, घर में आतंकी जल
होता फिर सर्वनाश का खेल
नरभक्षी बन
जलमय करे अमंगल की
क्रूर जल क्रीड़ाएँ
हुए तभी
जलयानों पर नाविक, सकल जन चेतना
अनहोनी से भयभीत
लहरों का महासंग्राम
उत्क्रांति का तांडव
विध्वंस त्राहि का साम्राज्य
असुर सा शैतान
बनता बिगड़ता सृष्टि का राग–ताल
प्रचंड, अधम, उदंड आसमान छूती लहरें
करने लगी सृष्टि विध्वंस
अमंगल, अमर्यादित हुआ विधि विधान
कलह, कोलाहल, विनाश, नाश
शांति कहाँ
वीर रस आवेश लिए
रण भूभाग बन जाता
लेता भेंट, बलि हर क्षण
खेलता खूनी फाग
लीलता जिंदगियाँ
प्रलय, विनाश का तांडव
कुदरत की काली करतूतें
देखती सृष्टि
तब भी
न चेतता मानव
विधि के विधान को
मानव जान
तभी बचेगी
अनमोल जान
हे मानव! तू जाग
न कर कुदरत से खिलवाड़।

कस्तूरी झा 'कोकिल',
बेगुसराय (बिहार)
मो.–09507598040

घटा गगन में घिरनेवाली
रुको यही मेरी नगरी है
लगता है पथ भूल गयी वह
पता नहीं कहाँ उतरी है

ढूँढ रहा हूँ नजर गड़ाकर
जबसे बिछुड़ी नहीं मिली है
मन चंचल है, दिल विह्वल है
मुरझाई हर घड़ी कली है

पलभर में ही जा सकती हो
दुनिया भर में कोना–कोना
दिन तो दिन है, अरी बहन तुम
नहीं जानती रात भी सोना

अगर खोज कर ला दो उनको
दूँगा तुम्हें पसंद का गहना
भाई हूँ, बेचैन बहुत हूँ
खलता बहुत अकेला रहना

मिलते–जुलते दिन कटता है
रात विषैली नागिन डँसती
दिल की बातें किसे सुनाऊँ
अश्रु देख दुनिया भी हँसती
(2)
जबसे मिली हो हवा में, गगन में
जल में, थल में, अनल के तपन में

विकल प्राण मेरे, न सूखे नयन ही
नहीं नींद आती, न भाया शयन ही
यही जिंदगी है, जीता जलन में
जब से मिली हो...तपन में

पीड़ा हृदय में रह–रह मचलती
व्यथा बरफ बन रह–रह पिघलती
किसको सुनाऊँ भींगी कहानी
आहें विरह की रह–रह निकलतीं
चुभते हैं काँटें सूने भवन में
जब से मिली हो...तपन में

करता रहूँगा इंतजार तेरा
गाता रहूँगा मनुहार तेरा
मन मानता है, न रूठी रहोगी
कटेगा खुशी में संसार मेरा
आओगी बन फूल उजड़े चमन में
जब से मिली हो...तपन में।

आलेख

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

विजयवर्धन
भागलपुर, बिहार
9204564272

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 ई0 में गुजरात के पोरबंदर (सुदामापुरी) स्थान पर हुआ था। इनके पूर्वज जूनागढ़ के थे। इनके पिताजी का नाम करमचंद उत्तमचंद गाँधी था, जो पोरबंदर स्टेट में दीवान के पद पर कार्यरत थे। इनकी चार शादियाँ हुई थीं, जिनमें चौथी शादी 1844 में पुतली बाई से सम्पन्न हुई थी। पुतलीबाई से चार संतान हुईं, जिनमें महात्मा गाँधी सबसे छोटे थे।

महात्मा गाँधी का पूरा नाम मोहनदास करमचंद गाँधी था। ये बचपन में बड़े शर्मीले एवं संकोची थे। पढ़ाई की अवस्था आने पर इन्हें स्कूल में भर्ती करवा दिया गया, किन्तु पढ़ाई पर ध्यान नहीं देने एवं कम उपस्थिति के कारण इन्हें कई स्कूल बदलने पड़े। तीसरी कक्षा में तो इनकी उपस्थिति 110/238 ही थी। सालाना परीक्षा में इन्हें 45–55 प्रतिशत से ज्यादा अंक नहीं आते थे। इनके बड़े भाई करसन दास तो इनसे भी पढ़ने में कमजोर थे। दो बार अनुत्तीर्ण होने के कारण दोनों भाई एक ही वर्ग में पढ़ने लगे। एक बार एक स्कूल इंसपेक्टर और गाँधीजी के वर्ग में बच्चों से पाँच से लिखने को कहा। गाँधीजी ने ज्ञमजजसम का स्पेलिंग गलत लिख दिया। अपने शिक्षक के इशारा करने पर भी इन्होंने सुधार नहीं किया। यह घटना गाँधीजी के जीवन के ईमानदारी की पहली घटना थी।

गाँधीजी कौ चवतजे या मगजतं बनततपबनसंत बजपअपजल में कोई दिलचस्पी नहीं रहती थी, पर उन्हें कभी–कभी पुरस्कार एवं छात्रवृत्ति मिल जाती थी। हाई स्कूल में पढ़ते हुए ये अपने एक सहपाठी शेख मेहताब के बहकावे में आ गये और कई बुराइयों के शिकार हो गये; जैसे–धूम्रपान करना एवं मांसाहारी होना आदि। पर इन्होंने जल्द ही इन्हें छोड़ दिया। धतूरे के बीज खाकर इन्होंने एक बार आत्महत्या करने की भी कोशिश की, पर बच गये।

1883 में गाँधीजी का विवाह तेरह वर्ष की अवस्था में कस्तूरबा से कर दिया गया, इससे गाँधीजी की पढ़ाई बाधित हो गयी। इन्हें एक वर्ग में दो बार रहना पड़ा। पर इससे एक फायदा यह हुआ कि इनकी दिलचस्पी पढ़ाई में बढ़ गयी। एक परीक्षा में तो इन्होंने 66 प्रतिशत अंक प्राप्त किया और उपस्थिति भी 100 प्रतिशत हो गयी। इनका वर्ग में आठवाँ स्थान आया। 1887 में जब इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा राजकोट हाई स्कूल से पास की, तब इनके विभिन्न विषयों में अंक इस प्रकार थे–अंग्रेजी 89/200, गुजराती 45.5/100, गणित 59/175, सामान्य विज्ञान 54/150; इस प्रकार इन्हें 625 अंकों की परीक्षा में 245 अंक प्राप्त हुए, जो 40 प्रतिशत था। इनका स्थान 404/823 था। 1988 में गाँधीजी ने समल दास कॉलेज, भावनगर में दाखिला लिया।

हाई स्कूल में गाँधीजी का सबसे अच्छा मित्र एक मुसलमान लड़का था और स्कूल के हेडमास्टर एक ईसाई व्यक्ति थे। यही कारण था, जिससे गाँधीजी में सभी धर्मों के प्रति समान आदर की भावना भर गई, जो आगे चलकर देश को स्वाधीन करने में बहुत बड़ी हथियार के रूप में काम आई। वे अपनी माँ से बेहद प्यार करते थे, पर माँ की अस्पृश्यता के विचार से असहमत रहा करते थे। बचपन में गाँधीजी ने हरिश्चन्द्र नाटक देखा था, जिससे इनके मन में सत्य के प्रति इतनी गहरी दिलचस्पी जगी कि इन्होंने इसे जीवनभर अपना लिया। मनुस्मृति पढ़ने से भी इन्हें सत्याग्रही बनने में बहुत मदद मिली।

गाँधीजी को चार पुत्र हुए–1. हीरालाल (1888), 2. मणिलाल (1892), 3. रामदास (1897) एवं 4. देवदास (1900)। एक रात बीमार पिता को छोड़कर गाँधीजी पत्नी के साथ सोने के लिए चले गये। दुर्भाग्य से उसी रात इनके पिताजी की मृत्यु हो गयी। इस घटना से इन्हें जीवनभर गहरा दुःख सालता रहा।

1888 में गाँधीजी जब वकालत पढ़ने के लिए लंदन जा रहे थे, तब इनकी माँ ने इन्हें तीन ँ से दूर रहने को कहा था–ँवउमदए ँपदम एवं ँ। गाँधीजी ने अपनी माँ की बात का शत–प्रतिशत पालन किया, पर खुद को ज्मदजसम उमद बनाने के लिए मँहगे कपड़े पहनते थे एवं सोने की चेनवाली घड़ी पहने थे। बाद में इन्होंने इन सब चीजों को फिजूलखर्ची माना एवं मितव्ययिता पर उतर आए। विलायत जाने के पूर्व गाँधीजी का विश्वास हिंसा में था, पर जब इन्होंने टालस्टाय को पढ़ा तो ये पूर्णतः अहिंसा के पुजारी हो गये। 1891 में गाँधीजी ने सूंदक श्रनतपेचतनकमदबम की परीक्षा पास की और बैरिस्टर बन गये।

उसी वर्ष वे भारतवर्ष लौट आए और बम्बई में इन्होंने प्रैक्टिस शुरू कर दी। दो वर्षों के बाद वे लीगल मुस्लिम रिप्रजेंटेटिव के रूप में 1893 में दादा अब्दुल्ला नामक व्यापारी के साथ अफ्रीका के डरबन शहर में गये। वहाँ वे 21 वर्षों तक रहे। वहाँ उन्होंने अश्वेत भारतीयों एवं नस्लीय भेदभाव का नंगा नृत्य देखा। कदम–कदम पर काले लोगों एवं भारतीयों के साथ अछूत की तरह व्यवहार देखकर गाँधीजी का कलेजा दहल गया। एक बार टिकट लेकर गाँधीजी फर्स्ट क्लास में बैइकर प्रिटोरिया जा रहे थे। इन्हें पीट्सवर्ग में डब्बे से निकल जाने को कहा गया। जब इन्होंने विरोध किया, तब इन्हें चलती ट्रेन से प्लेटफार्म पर धकेलकर गिरा दिया गया। आज उसी स्थान पर गाँधीजी की मूर्ति स्थापित की गयी है। प्रतिभा पाटिल को उसी स्थान पर सम्मान के साथ उतारा गया था। गाँधीजी को अफ्रीका में बार–बार पगड़ी उतारने को कहा जाता था, पर इन्होंने सदा इसका विरोध किया और कभी भी पगड़ी नहीं उतारी। इन बातों ने गाँधीजी को एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में तराश दिया, जिससे ये अन्याय के प्रति दिनोंदिन दृढ़ होते चले गये।

1915 में गोपालकृष्ण गोखले के कहने पर जिन्हें वे अपना राजनीतिक गुरु मानते थे, भारतवर्ष लौट आए और प्दकपंद छंजपवदंस ब्वदहतमे की सदस्यता ग्रहण कर ली। इनकी कर्मठता को देखकर चंपारण के श्रीराजकुमार शुक्ला ने इन्हें 1917 में करबद्ध प्रार्थना भरा पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने गाँधीजी को कम से कम एक बार चंपारण आकर निलहे मजदूरों की दयनीय अवस्था देखने की कामना व्यक्त की थी। गाँधीजी जब चंपारण जा रहे थे, तब उन्हें कैद कर लिया गया, जो भारतवर्ष में गाँधीजी की पहली गिरफ्तारी थी। जब ये रिहा हुए, तब ये चंपारण गये। अंग्रेजों द्वारा सताये गये निलहे मजदूरों की विपन्न स्थिति को देखकर गाँधीजी कराह उठे। इन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया। तंग आकर अग्रेजों ने मजदूरों पर होनेवाले अत्याचार को बहुत कम कर दिया।

1915 में ही गाँधीजी ने अपने मित्र जीवनलाल देसाई के बंगलो में सत्याग्रह आश्रम खोला, जिसमें खेती, एनीमल हसबैंडरी आदि कई तरह के काम होते थे। 1917 में इस आश्रम को साबरमती नदी के किनारे स्थानांतरित कर दिया गया और नाम रखा गया साबरमती आश्रम। यहाँ गाँधीजी अपनी पत्नी बा के साथ बारह वर्षों तक रहे। यहीं से इन्होंने डांडी यात्रा शुरू की थी। इस आश्रम में हृदयकुंज, विनोबा कुटीर उपासना मंदिर आदि हैं।

गुजरात के खेड़ा स्थान में 1918 में बाढ़ एवं दुर्भिक्ष ने लोगों को लगभग लील लिया। ऊपर से अंग्रेज सरकार कर की वसूली करने लगी, जिससे लोग बेचैन हो गये। गाँधीजी ने वहाँ भी कड़ी मेहनत की और लोगों को कर से तबतक मुक्त करवाया, जबतक दुर्भिक्ष का संकट टल न जाए।

1919 में ब्रिटिश राज ने रोलेट एक्ट के द्वारा भारतीयों के आम अधिकार छीन लिये। इसके विरोध में गाँधीजी ने पहला सत्याग्रह छेड़ा।

गाँधीजी ने एक बार थोरो द्वारा लिखा गया एक आलेख पढ़ा, जिससे उनके मन में असहयोग आंदोलन की भावना जागृत हुई। इन्होंने अनुभव किया कि भारतीयों के सहयोग से ही अंग्रेज भारत में अपना साम्राज्य

स्थापित कर सके हैं, अगर इन्हें सहयोग न दिया जाए तो वे संकट में पड़ जायेंगे और देश आजाद हो जाएगा। इसलिए 1920 में अहिंसा के हथियारों से देशव्यापी असहयोग आंदोलन प्रारंभ कर दिया। इस आंदोलन में हिन्दू और मुसलमानों ने मिल–जुलकर साथ दिया। इस आंदोलन के तहत गाँधीजी ने आजीवन खादी के वस्त्र पहनने का व्रत लिया और लोगों से भी विदेशी वस्त्र नहीं पहनने को कहा।

1921 में गाँधीजी ने देशभर में विदेशी वस्त्रों की होली जलवा दी। लोगों ने अपने बच्चों को सरकारी स्कूल से निकाल लिया, विदेशी वस्तुओं का व्यवहार छोड़ दिया, अंग्रेजों की नौकरी से इस्तीफा दे दिया और अंग्रेजों की उपाधियों को लौटा दिया। गाँधीजी ने लोगों को तकली एवं चरखे से सूत कातने को कहा, जिससे खादी के वस्त्र तैयार हो गये। देश में कई जगह चरखे बनने लगे और जगह–जगह खादी ग्रामोद्योग खोले गये, जिससे लोगों में उत्तेजना जाग उठी। इससे अंग्रेज बौखला गए और उनका अत्याचार बढ़ गया। फलतः 1922 में गोरखपुर स्थान पर भारतीयों ने चौराचौरी कांड के तहत 23 अंग्रेज सिपाहियों को थाना में आग लगाकर मार डाला। इस घटन के 19 अभियुक्तों को फाँसी की सजा हुई।

1922 में गाँधीजी को पुनः कैद कर लिया गया। इस कैद में गाँधीजी के पेट में दर्द हो गया। डॉक्टरों ने इनके पेट में एपेंडिक्स का रोग बताया, जो बिना ऑपरेशन के ठीक होनेवाला नहीं था। इसलिए इन्हें रिहा कर दिया गया।

1907 में कांग्रेस दो दलों में बँट गयी थी। गरम दल के नेता चितरंजन दास एवं मोतीलाल नेहरू तथा नरम दल के नेता राजगोपालाचारी एवं सरदार बल्लभ भाई पटेल थे। देश हितैषियों ने प्रयास करके दोनों दलों को मिला दिया, जिससे 1916 का कांग्रेस अधिवेशन बड़ा सफल रहा, जिसमें गाँधीजी की भी अहम भूमिका रही।

1929 में जब साइमन कमीशन भारत में आया, तब लोगों में काफी आक्रोश भर गया, क्योंकि इसका उद्देश्य था—भारत स्वशासन के योग्य है या नहीं। इसका पूरे देश में विरोध हुआ। लाहौर में लाला लाजपत राय पर लाठियाँ चलायी गयीं, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी।

1930 में गाँधीजी ने असहयोग आंदोलन के तहत नमक आंदोलन प्रारंभ कर दिया, जिसमें उन्होंने समुद्र के जल से लोगों को नमक बनाने को कहा। वे 78 लोगों के साथ 24 दिनों में समुद्र के किनारे स्थित डांडी गये, जो साबरमती से लगभग 240 मील दूर है। उन्होंने घोषणा कर दी कि बिना स्वराज पाये वे साबरमती नहीं जायेंगे। देश में कई जगह नमक बनाने का काम प्रारंभ हो गया। इस आंदोलन से अंग्रेजी सरकार की नींव हिलने लगी।

गाँधीजी ने पर्दाप्रथा, बाल–विवाह, अस्पृश्यता आदि के विरोध में आवाज उठायी, जिससे बहुत हद तक बंद हो गयी। विधवा विवाह को इन्होंने प्रोत्साहन दिया, जिससे अनेक लोगों ने विधवाओं से विवाह करके समाज में नई क्रांति लाई। 1933 में अछूतों को समाज में सम्मान दिलाने के लिए गाँधीजी ने उन्हें हरिजन नाम से सुशोभित किया। इस कार्य में डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भी उनका साथ दिया।

1942 में गाँधीजी ने भारत छोड़ो आंदोलन आरंभ कर दिया, जिससे अंग्रेजों पर भारतवर्ष को स्वतंत्र करने का दबाव बढ़ा। यह आंदोलन बहुत प्रभावी रहा। 1942 में ही इन्होंने करो या मरो का नारा दिया। इसका उद्देश्य था–आंदोलन तबतक जारी रखना है जबतक देश आजाद न हो जाए। इस आंदोलन के तहत इन्हें गिरफ्तार कर पूना के आगा जेल में रखा गया। यहाँ इनके जीवन की दो दुःखद घटनाएँ घटीं। पहली घटना तब घटी, जब इनके सचिव महादेव देसाई का निधन 1942 में तथा बा का निधन 1944 में हो गया। यहीं गाँधीजी को मलेरिया हो गया, जिससे इन्हें रिहा कर दिया गया।

दुर्भाग्य से जो मो. जिन्ना भारत–पाकिस्तान बँटवारे पर क्रुद्ध हो जाते थे, वही भारत–पाकिस्तान के बँटवारे पर अड़ गये। गाँधीजी ने उन्हें बहुत मनाया, पर वे नहीं माने। अंत में भारत और पाकिस्तान का बँटवारा हो गया। 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान को अलग किया गया और 15 अगस्त 1947 को भारतवर्ष आजाद हुआ। जब देश आजाद हो गया, तब लोगों ने उनके चेहरे पर खुशी की जगह उदासी देखी। इसका कारण यह था कि जो अहिंसक क्रांति लाना चाहते थे, वे नहीं ला सके। आम जनता से लेकर राजनीतिज्ञों तक में इन्होंने लालच की प्रवृत्ति देखी। इससे वे अंदर ही अंदर घुटने लगे।

भारतवासी देश आजादी की खुशियाँ मना ही रहे थे कि 30 जनवरी, 1948 को बिड़ला मंदिर में प्रार्थना करने जाते समय नाथू राम गोडसे गाँधीजी को मारने आया। जब वह पिस्तौल लेकर सामने आया, तब उसे मनु ने रोका, जो आभा के साथ गाँधीजी के अगल–बगल सदा रहती थी और गाँधीजी की पोतियाँ थीं। गोडसे ने मनु को धक्का देकर गिरा दिया एवं गाँधीजी के सीने में तीन गोलियाँ दाग दीं। गाँधीजी वहीं पर गिर गए और स्वर्ग सिधार गये। लोग कहते हैं कि अंतिम समय में गाँधीजी ने राम का नाम लिया था, पर गोडसे ने कहा है कि उन्होंने राम का नाम नहीं लिया था। करोड़ों लोगों ने गाँधीजी की मृत्यु पर आँसू बहाए; क्योंकि उन्हें लगा कि हमारे अभिभावक चले गये। गाँधीजी की चिता दिल्ली में ही जलाई गई एवं भस्म को संगम में विसर्जित कर दिया गया। दिल्ली के राजघाट पर गाँधीजी की समाधि बनाई गई, जिसपर 'हे राम' लिखकर उसे सार्थक एवं पवित्र बना दिया गया। हजारों देशी और विदेशी लोग अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए यहाँ आते हैं। गाँधीजी जेल में कैदियों को हिन्दी पढ़ाने लगते थे, जिससे परेशान होकर अंग्रेज सरकार इन्हें रिहा कर देती थी।

गाँधीजी इतने दृढ़प्रतिज्ञ थे कि जो ठान लेते थे, उसके लिए जी जान सी बाजी लगा देते थे। उन्होंने अपने जीवन में सादगी का जो व्रत्त लिया, उसे कभी नहीं छोड़ा। वे भोजन में नमक तक का व्यवहार नहीं करते थे। सब्जी को उबालकर भात के साथ खाते थे। 1906 में इन्होंने ब्रह्मचर्य रहने की ठान ली और इसे जीवनभर निभाया। इन्होंने अपने जीवन को इतनी सादगी एवं सरलता में ढाल लिया था कि उनकी पद्धति गाँधी–पद्धति कहलने लगी। आज भी लोग सीधे–सादे व्यक्ति को गाँधी कह देते हैं। हजारों लोगों ने गाँधीजी के रास्ते पर चलकर अपने जीवन को सरल एवं शांतिमय बनाया। विनोबा भावे आदि गाँधीजी के पक्के अनुचर थे।

एक बार गाँधीजी आचार्य कृपलानी जी से मिलने के लिए बिहार के मुजफ्फरपुर पर गये। स्टेशन पर लोग इन्हें ट्रेन के ऊँचे दर्जे में खोज रहे थे, पर ये तीसरे दर्जे में बैठे थे। इसलिए इन्हें किसी ने नहीं देखा। ये अपनी छोटी–सी गठरी में एक चादर, पहनने के कुछ कपड़े तथा खजूर से भरा एक डब्बा लेकर चलते थे। अपनी गठरी को तकिये के रूप में प्रयोग करते थे। ऐसा सादा जीवन था गाँधीजी का।

गाँधीजी छोटी–सी–छोटी चीजों को भी नहीं फेंकते थे। छोटे–से–छोटे कागज के टुकड़ों का भी व्यवहार कुछ–न–कुछ लिखने के लिए कर ही लेते थे। एक बार किसी ने गाँधीजी को अपशब्द भरा कई पन्नों का पत्र भेजा। गाँधीजी ने पूरा पत्र पढ़ा और उसके पिन को व्यवहार करने के लिए रख लिया तथा पत्र को पढ़कर फाड़ दिया। उनके चेहरे पर सिकन तक नहीं आई। अफ्रीका में इन्होंने पाखाना तक साफ किया था। इस प्रकार ये सरल तरीकों को अपनाकर जीवन की कई समस्याओं का हल ढूँढ़ लिया करते थे।

गाँधीजी की सहनशीलता भी अनूठी थी। एक बार तपती धूप में राजेन्द्र बाबू के साथ गाँधीजी नंगे पाँव जा रहे थे। राजेन्द्र बाबू ने अपनी चादर इनके पाँव के नीचे रखना आरंभ कर दिया। गाँधीजी ने कहा–देश के करोड़ों लोग बिना जूते के चलते हैं, तो मैं क्यों न चलूँ।

गाँधीजी समय के पक्के पुजारी थे। जब कोई उनसे मिलने आता था, तो ये नियत समय के बाद समय नहीं देते थे और दूसरे दिन आने का आग्रह कर देते थे। एक सभा में भाषण देने के लिए घोड़ागाड़ी से जाना था। जब समय पर घोड़ागाड़ी नहीं आई, तो गाँधीजी पैदल ही चले गये और ठीक समय पर भाषण दिया।

गाँधीजी उपवास को आत्मशुद्धि का अचूक साधन मानते थे। जेल में प्रत्येक सोमवार को ये मौन धारण करते थे। उपवास के दिनों में भी ये चरखा

जरूर चलाते थे। चरखा चलाना इनके लिए यज्ञ के समान था। ये जो काम स्वयं नहीं कर सकते थे, उसे दूसरों से नहीं करवाते थे। इनके अनुसार हिंसा करना ही हत्या नहीं, बल्कि दूसरों को मानसिक चोट पहुँचाना भी हिंसा है। अस्पृश्यता को ये पाप समझते थे। इन्होंने एक अछूत कन्या को अपने पास तबतक रखा, जबतक उसका विवाह करके उसका घर नहीं बसा दिया।

गाँधीजी संसार के प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवार का सदस्य मानते थ, क्योंकि' वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना इनके हृदय में गहरी पैठ बना ली थी। एक बार जेल में एक अफ्रीकी कैदी को एक बिच्छू ने डँस लिया। गाँधीजी ने मुँह से चूसकर जहर निकाल दिया। वह कैदी उस दिन से गाँधीजी का पक्का चेला बन गया। इस प्रकार गाँधीजी सबों के साथ संतानवत् व्यवहार करते थे। कभी उन्होंने किसी के साथ भी भेदभाव नहीं किया।

गाँधीजी ने आत्मप्रशंसा तो कभी नहीं की, बल्कि दूसरों के द्वारा प्रशंसा करने पर गंभीर हो जाते थे। पर जब कोई उनके विरोध में बोलता था, तब उनका चेहरा खिल उठता था। 'निंदक नियरे राखिए' के वे पूर्णतः समर्थक थे।

गुजराती भाषी होने के बावजूद गाँधीजी हिन्दी भाषा से बेहद प्यार करते थे। वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के सबसे बड़े हिमायती थी। गाँधीजी का विचार था कि बच्चों की शिक्षा मातृभाषा में हो। दूसरी भाषा में शिक्षा देना हत्या के समान है। वे शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण समझते थे, कैरियर निर्माण नहीं। गाँधीजी को पुस्तकों से अगाध प्रेम था। उन्हें जब भी फुर्सत मिलती थी, वे पुस्तक पढ़ने लगते थे। उनकी प्रिय पुस्तक टालस्टाय की 'द किंगडम ऑफ गॉड इज इन बिथ यू', रस्किन की 'अनूटू दि लास्ट आदि। उनका कहना था कि हिन्दी ही वह भाषा है, जिसे भारतवर्ष के अधिकांश लोग समझते एवं बोलते हैं। उन्होंने बाल गंगाधर तिलक एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर को हिन्दी सीखने के लिए प्रेरित किया।

एक बार काठियाबाड़, गुजरात में रवि बाबू ने हिन्दी में भाषण देकर सबको चकित कर दिया था। गाँधीजी ने ही सर्वप्रथम रवि बाबू को गुरुदेव एवं रवि बाबू ने गाँधीजी को महात्मा कहा था। एक दूसरे के प्रति कितना प्रगाढ़ आदर भाव था। गाँधीजी सदा हिन्दी में ही भाषण देते थे।

1916–1917 में बिहार के भागलपुर के कटहलबाड़ी छात्र सम्मेलन में गाँधीजी ने हिन्दी में भाषण देकर स्वतंत्रता संग्राम का शंखनाद किया था। कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस के वार्षिक राष्ट्रभाषा सम्मेलन में तिलक और सरोजिनी नायडू ने अंग्रेजी में भाषण दिया, जिससे गाँधीजी नाराज हो गये। तिलकजी ने कहा, 'मुझे हिन्दी नहीं आती।' गाँधीजी ने कहा, 'आप संस्कृत और मराठी तो जानते हैं।' आगे उन्होंने सरोजिनी नायडू तो हिन्दी जानती है, उन्होंने हिन्दी में भाषण क्यों नहीं दिया?हमें अपनी भाषा से प्रेम करनी चाहिए, वरना स्वतंत्रता का ख्वाब देखना व्यर्थ है।

गाँधीजी से किसी ने एक बार पूछा, 'अंग्रेजी शिक्षा ने राजा राम मोहन राय, लोकमान्य तिलक एवं आपको पैदा किया, फिर भी आप अंग्रेजी शिक्षा के इतना विरुद्ध क्यों हैं?गाँधीजी ने कहा, 'मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, पर तिलक या राजा राम मोहन राय जो कुछ भी है, वे उससे बड़े होते अगर उनपर अंग्रेजी शिक्षा का बोझ नहीं होता। ये लोग शंकराचार्य, गुरु नानक या कबीर की तुलना में क्या है। आज प्रचार के अनेक साधन हैं, पर उनके समय तो कुछ भी नहीं था, फिर भी विचारों की दुनिया में उन लोगों के कितनी बड़ी क्रांति मचा दी थी, जिसका कायल आज भी सारा विश्व है। हमलोग व्यर्थ ही अंग्रेजी के मोह–जाल में फँसे हुए हैं। कितना सार्थक उत्तर दिया गाँधीजी ने।

1922 में देशद्रोह के मामले में गाँधीजी को अहमदाबाद के जिला एवं सेशन जज ने जज मि. ब्रूमफिल्ड की अदालत में पेश किया गया। गाँधीजी को देखते ही उनके सम्मान में ब्रूमफिल्ड खड़े हो गये। ब्रूमफिल्ड ने कहा–शायद ही कोई आप–जैसा सम्मानित व्यक्ति इस अदालत में आजतक आया हो या आएगा। दुनिया के किसी अदालत में किसी आरोपी के सम्मान में जज का खड़ा होना शायद यह पहली और अंतिम घटना है।

1937, 1938, 1939, 1947 एवं 1948 ई0 में गाँधीजी को नोबेल पुरस्कार के लिए नामित किया गया, पर चर्चिल ने पाँच बार उनके नाम को खारिज कर दिया; क्योंकि गुलाम देश के व्यक्ति को नोबेल प्राइज देना उन्हें रास नहीं आया। वस्तुतः चर्चिल गाँधीजी से भयभीत रहते थे। आज नोबेल की समिति पछता रही है कि उसने गाँधी–जैसे महान व्यक्ति को नोबेल क्यों नहीं दिया, मात्र इसलिए कि उसकी महत्ता और बढ़ जाती।

जिस गाँधीजी की कृशकाया, साधारण पहनावा एवं सरल व्यक्तित्व पर दुनिया उपहास करती थी, उसी गाँधीजी की हत्या पर दुनिया फूट–फूटकर रोई। कुछ देशों ने तो यहाँ तक कहा कि काश! मेरे यहाँ गाँधीजी पैदा होते। आज सारी दुनिया भारतवर्ष को गाँधीजी के देश के रूप में जानती है।

महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने कहा था–'आनेवाली पीढ़ी शायद ही विश्वास करेगी कि हाड़–मांस का पुतला गाँधी कभी पृथ्वी पर चला था।

लुई फिशर का कहना था कि इंसान को अगर जिंदा रहना है, तो गाँधीजी के मार्ग पर चलना ही होगा।

यू.एस.ए. ने गाँधीजी के जन्मदिन दो अक्टूबर को प्दजमत छंजपवदंस क्ल वछिवद.टपवसमदबम घोषित कर दिया है।

गाँधीजी एक ऐसे चरित्र थे, जिनमें बुद्ध की करुणा, महावीर की अहिंसा, हिन्दू की क्षमा, सिखों की सेवा एवं इस्लाम की समानता विद्यमान थी। उनका जीवन एकादश वृत्त पर आधारित था, जिन्हें उन्होंने जीवनपर्यन्त निभाया। जैसे–सत्य, अहिंसा, अभय, अस्तेय। चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीरश्रम, स्वदेशी, समता, नम्रता एवं अस्पृश्यता। उन्होंने किसी को भी वह उपदेश नहीं दिया, जिसे उन्होंने अपने जीवन में नहीं अपनाया। इसीलिए उनकी वाणी का प्रभाव विश्व के संपूर्ण जनमानस पर पड़ा।

गाँधीजी श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्त थे, पर वे तिलक, चंदन और पूजा पर विश्वास नहीं करते थे। स्वतंत्रता संग्राम को उन्होंने धर्मयुद्ध की संज्ञा दी थी। मेरे सपनों का भारत पुस्तक में उन्होंने गरीबों, अछूतों, उपेक्षितों आदि के पूर्ण विकास पर बल दिया है। उनका कहना था कि प्रत्येक नागरिक यह महसूस करे कि देश उसका है। वे सर्वोदय एवं अन्त्योदय दोनों चाहते थे। वे न तो शोषित के पक्षधर थे और न शोषक के। अगर एक दूसरे के उत्थान में मदद करेंगे तो सेना छोटी। वह केवल रक्षार्थ होगी न कि युद्धार्थ। अगर ऐसा हुआ तो पैसे का बहुत बचत होगा।

चंपारण में एक नारी की मटमैली साड़ी देखकर गाँधीजी ने उससे कहा–'तुम वस्त्र साफ क्यों नहीं करती?' महिला ने कहा–'महाशय! मैं बहुत गरीब हूँ। मेरे पास केवल एक साड़ी है। मैं इसे कैसे धोऊँ?' गाँधीजी यह बात सुनकर इतने दुःखी हुए कि उन्होंने उसी दिन से एक धोती में जीवन गुजारने की कसम खाई और जीवन भर निभाया।

एक बार इंग्लैंड में राजदरबार में वस्त्र की कारण गाँधीजी को आने नहीं दिया गया। गाँधीजी जी ने भी कहा–'मैं वस्त्र नहीं बदलूँगा। अंत में अम्पायर खुद आए और गाँधीजी को ले गये।

एक दिन एक लड़की ने गाँधीजी से बात करनी चाही। गाँधीजी ने दूसरे दिन आने को कहा। दूसरे दिन गाँधीजी एक सभा में शरीक थे, जब उन्होंने मंच से उस लड़की को देखा, तो मंच से उतरकर उस लड़की से मिले।

1915 में श्रीगोपालकृष्ण गोखले ने गाँधीजी को भारतवर्ष में काम करने के लिए अफ्रीका से बुलवाया, पर दुर्भाग्यवश उसी वर्ष गोखले का निधन हो गया। गाँधीजी को इतना दुःख हुआ कि उन्होंने एक वर्ष तक चप्पल नहीं पहनी।

चंपारण में गाँधीजी को एक त्मेजतपबजमक ।तमं में जाने से लोगों ने रोगा; क्योंकि वह क्षेत्र अंग्रेजों का था। पर गाँधीजी ने नहीं माने और चले गये। उनके साहस को देखकर अंग्रेज भी दंग रह गये।

एक दिन गाँधीजी रात्रि के दो बजे अपने निवास–स्थान पर पहुँचे। उन्होंने रात्रि दो बजे से तीन बजे तक चरखा काता, तब सोये; क्योंकि व्यस्तता के कारण उन्होंने चरखा नहीं काता था। काम के प्रति ऐसे वफादार थे गाँधीजी।

एक दिन गाँधीजी के आश्रम में एक सज्जन 'अछूतों से कैसा व्यवहार किया जाय' विषय पर बात करने आए थे। इसी बीच एक अछूत बालिका आई एवं बिस्कुटी गाँधीजी की गोद में बैठकर खाने लगी। उसने आधी बिस्कुल खाकर

गाँधीजी के मुँह में डाल दिया, जिसे गाँधीजी ने निःसंकोच खा लिया। यह दृश्य देखकर वह सज्जन अचंभित हो गए। उन्होंने कहा–'मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया।'

आगा खाँ पैलेस में जब कस्तूरबा का देहांत गाँधीजी की गोद में हो गया, तब गाँधीजी ने का–'बा मुझमें समा गयी।' उनकी आँख से आँसू के दो बूँद बा की गाल पर गिरे।

गाँधीजी स्वतंत्रता की लड़ाई में पूँजीपतियों से दूर रहते थे, पर जब रतन टाटा ने इन्हें 24 हजार रुपये का दान किया, तब इन्होंने उनको दिल से आशीर्वाद दिया।

गाँधीजी ने श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर को सर्वप्रथम गुरुदेव कहा था और गुरुदेव ने ही उन्हें सर्वप्रथम महात्मा कहा था।

गाँधीजी ने कई पुस्तकें लिखीं हैं–हिन्द स्वराज, सत्य के प्रयोग, आत्मकथा, मेरे सपनों का भारत, गीता बोध, मंगल प्रभात। गाँधीजी पर कई फिल्में बनी हैं–गाँधी, हे राम, मैंने गाँधी को नहीं मारा, मेकिंग ऑफ महात्मा गाँधी।

गाँधीजी की प्रशंसा में कई लोगों ने कई पुस्तकें लिखी हैं। जैसे भवानी प्रसाद मिश्र–'पंचशती', हरिवंश राय बच्चन–'सूत्र की माला', रामनरेश त्रिपाठी–'गाँधी तास जवहार पत्ता', डॉ. राजेन्द्र प्रसाद–'बापू के कदमों में', गणेश शंकर विद्यार्थी–'श्रीगाँधी', नरोत्तम दास–'गाँधी गौरव', डॉ. रामधारी सिंह दिनकर–'बापू'

कवि प्रदीप ने गाँधीजी पर एक ऐसा गीत लिखा है, जिसे सुनकर आँखों से आँसू गिरने लगते हैं।

दे दी हमें आजादी बिना खडग बिना ढाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

गाँधीजी के उपदेश–

1. थोड़ा अभ्यास उपदेश देने से अच्छा है।
2. अपनी गलती स्वीकार करना झाड़ू लगाकर आत्मा को शुद्ध करना है।
3. इस तरह जियो कि कल मरना है; इस तरह सीखो कि जैसे हमेशा जीना है।
4. खराब लिखावट अधूरी शिक्षा की निशानी है।
5. श्रम के बिना संपदा, अंतरात्मा के बिना आनंद, चरित्र के बिना ज्ञान, नैतिकता के बिना व्यापार, मानवता के बिना विज्ञान, त्याग के बिना प्रार्थना तथा सिद्धांत के बिना राजनीति हिंसा की जड़ है।

गाँधीजी के कुछ नकारात्मक कार्य–

1. गाँधीजी ने कहा था कि भारत और पाकिस्तान का बँटवारा मेरी लाश पर होगा, किन्तु उनके जीवन जीवन में ही बँटवारा हो गया।
2. गाँधीजी ने भगत सिंह द्वारा बम फोड़े जाने की निंदा की, पर श्रद्धानंद के हत्यारे अब्दुल रशीद के प्राण की रखा के लिए अंग्रेजों से भीख माँगी।
3. 1932 में सर्वसम्मति से पटेल के कांग्रेस के अध्यक्ष बनने पर उन्होंने उनकी पुत्री अनु से आग्रह किया कि वे अपने पिता को जवाहर लाल नेहरू के लिए पद छोड़ने को कहें।
4. ऊधम सिंह द्वारा आडवायर की हत्या करने पर उन्होंने कहा–इस घटना से मुझे दुःख है। जबकि आडवायर ने जालियाँवाला बाग हत्याकांड करवाया था।

कुछ नकारात्मक पहलुओं के बावजूद महात्मा गाँधी का सकारात्मक पहलू इतना विशाल और प्रशंसनीय है कि उसक पूर्णरूपेण वर्णन करना असंभव है। हम यदि उनके कदमों पर दो–चार कदम भी चलें, तो हमारा जीवन धन्य हो जाए। कवि दिनकर ने ठीक ही कहा है–

तेरा विराट यह रूप कल्पना पट पर नहीं समाता है
जितना कुछ कहूँ मगर कहने को शेष बहुत रह जाता है।

लोकवाणी :

1. आदरणीय
सम्पादक महोदय
सादर नमस्कार,
आशा है सपरिवार स्वस्थ, सानंद होंगे। 'सुसंभाव्य' पत्रिका नियमित मिल रही है, आपका धन्यवाद आभार, पत्रिका का इंतजार बना रहता है, इसे संवारने में साहित्यिक जगत् में विशिष्ट पहचान बनाने में आपके कुशल संपादन को साधुवाद। समीक्षाएँ, लेख तो स्तरीय रहते हैं।
'सुसंभाव्य' में प्रकाशनार्थ मौलिक अप्रकाशित दो कविताएँ तथा फोटो पत्र के संलग्न प्रेषित हैं, आशा है योग्य लगेंगी, स्वीकृत कर पत्रिका में स्थान देने का कष्ट करेंगे।
शुभकामनाओं के साथ। –शिव डोयले

2. आदरणीय
श्रीदयानंद जायसवालजी
सादर प्रणाम!
आप द्वारा संपादित पत्रिका 'सुसंभाव्य' लगातार मिल रही है। पत्रिका भेजने के लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद!
पत्रिका की सोच, विचारधारा, दृष्टिकोण और सबकी पेशकारी बहुत सराहनीय है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। अप्रैल, 2017 अंक में आपकी संपादकीय, संघर्षशील व्यक्तित्व : एल्बार्ट आइंस्टीन व रघुवीर सहाय की रचना के साथ सारा मैटर ही बढ़िया और प्रशंसनीय है। हिन्दी भाषा की और पूरी मानवता की सेवा करने के लिए आपको पुनः बधाई।
–डॉ0 सुदर्शन गासो

3. 'सुसंभाव्य' के जुलाई अंक में प्रकाशित धर्मेन्द कुसुम की कहानी 'पंचायत' पढ़ी, बहुत ही सुंदर एवं व्यंग्यात्मक रचना है। कहानी पढ़ते हुए प्रेमचन्द की याद आ रही थी, वाकई बहुत सुंदर।
–जय कृष्ण कुमार, तिलकामांझी, भागलपुर,
8709451195

4. गांधीजी के 'ग्राम सुराज' के सपने की मौजूदा हकीकत इतना कुरूप, वीभत्स और स्वार्थपरक भी हो सकता है, यह 'सुसंभाव्य' के जुलाई अंक में प्रकाशित धर्मेन्द्र कुसुम की कहानी 'पंचायत' पढ़कर ही जाना। पंचों की इस स्वार्थान्धता को जानकर सचमुच बापू की आत्मा स्वर्ग में भी कराह रही होगी। यथार्थ के धरातल से अपनी ऐसी लाजवाब कहानी के लिए कथाकार एवं संपादक को कोटिशः धन्यवाद।
राजेन्द्र राजा, ग्राम–घघरी, पो0–बनगामा, जिला–अररिया
मो.–9939217028

सोनमन काकी

धर्मेन्द्र कुसुम
आदमपुर, भागलपुर
मो. 9934891141

सोनमन काकी। गाँवभर की काकी। सोना जैसा सुंदर चमकीला मन या मन भर सोने की मालकिन। क्यों नाम पड़ा सोनमन?मैं समझना चाहता हूँ। दादाजी बताते हैं–''दोनों बात सही छै, लेकिन सोनमन थान में नैहरो रहै ओकरो, तें नाम पड़लै सोनमन। पैहने सोनमन वाली फेर भेलै काकी।''

बहुत देर से धुँआ रहा घूरा (अलाव) अचानक धुँधला उठता है। ताव अधिक लगने लगी तो हमलोग बिड़ुआ (पुआल के जूने से बना बैठने का एक उपकरण) खिसकाते हुए थोड़ा–थोड़ा पीछे हट गये। दादाजी बोले–'हुकारी मारते रहियै, तभिये खिस्सा सुनाबै में अच्छा लागै छै।' दादाजी की बात पर बलचनमा (बालचन्द) तीन बार हुंकारी मारकर खी–खी करने लगता है। दादाजी डाँटते हैं–'चोप्प।' सब चुप हो जाते हैं। किस्सा आगे बढ़ता है।

'सोनमन काकी जब नया–नयी यै गाँव में बियाही के ऐलौ रहै त पूरा गाँव चौंधियाय गेलो रहै, ओकरो रूप–ललाट देखी के। जेतने सुन्नर ओतने चेहरा पर तेज दिप–दिप। आँख, कान, नाक, बाल सब सुन्नर। नख सें सिख तक परी। राज परी। जल परी, इन्द्र परी सब फेल। इलाका उमड़ी गेलो रहै ओकरा देखै ले। हँसै त मोती झड़ै ओ कानै त , नै कानै नै रहै, कानतिहै त पता नै कि झड़तिहै। कोय कानतें नै देखलकै ओकरा। साँय के मौत पर भी कानलै–बाजलै नै। खाली सिसकी। शांत सिसकी के भीतर छाती में हाहाकार जरूरे मचलो होतै। भीतर अन्धड़ लेकिन बाहर हवा के झौकों नै–इस्थिर परग (स्थितप्रज्ञ)।'

'इस्थरपरग मानें दादा'?रमुआ (रमेश) ने पूछा।

दादा बोले–'इस्थिरपरग मानें जे आदमी सुख–दुख में एक समान रहे, बिचलित नै हुवे।' बलचनमा ने कहा–'अच्छा–अच्छा जानलियै।' मैंने अपनी काबिलियत बघारी, 'तँहु नै जानै रहैं रे।' दादा ने तिरछी नजर मुझपर डाली और मुस्कुराये, जैसे कह रहे हों कि तोंहीं कि एकरो अर्थ जानै रहें की?मैं शरमा गया और अपनी झेंप मिटाने के लिए लकड़ी का टुकड़ा लेकर घूरा उटकने लगा।

किस्सा फिर चला–'पछियारी कात में पुरनका डीहो पर जे भूतहा खंडहर छै। ऊ टैम में दरबार रहै, दरबार। वैसनों हवेली अस्सी जोजन उत्तर–दक्षिण–पूरब–पश्चिम में नै रहै। जेना राजा के दरबार लागै छै, ओन्हैं वहाँ भी दरबार लगै रहै। दरबार में भोरे सें जमा हुए लागै रहै इलाका भर के लोग। हालाँकि हवेली के मालिक रामसुभग सिंघ दोपहर से पैहनें दरबार में हाजिर नै हुऐ रहै, लेकिन हुनका पहुँचै सें पैहनें भी दरबार में जमा हुऐ बाला लोग के खातिर–बात, चाय–जलखै में कोय कमीं नै रहै। ऊ राम सुभग सिंघ एक बेर दरबार में आबी जाय त जल्दी उठबो नै करै रहै। रात एगारो–बारो सें पैहनें कहियो आंगन नै लौटलै। खूब नाम, खूब जस। नै झगड़ा, नै बैर, सबसें प्रेम। धन–दौलत, जमीन जायदाद, लछमी–सरसत्ती सब कुछ। बस एक्केटा दुख–बेटा नै, बेटी भी नै, निपुत्तर।'

रामसुभग सिंघ के बापो के नाम रहै–रायबहादुर राम विचार सिंघ। रायबहादुर के टायटिल लाट साहब नें देनें रहै हुनका। अंगरेज सें बढ़िया संबंध, दोस्ती, खाना–पीना। भाय में अकल्ले, बेटी नैं, बेटा एक्के–राम सुभग सिंघ। एक बेटा–खूब मान–दान, लाड़–प्यार। सोना के थाली, सोना के चम्मच, सोना के कटोरा। दुलार में बेसी पढ़लकै नै, लेकिन जेतने पढ़लकै, ओतने खूब गियान, सब बातो के जानकार। जवानी सें पैहनें माय–बाप दोनों मरि गेलै। जवान भेलै त बलुआ डियोढ़ी के एक जमींदारे परिवार में बिहा भेलै। कनियाय काफी सुन्नर लेकिन बिहा के दस बरस बाद भी बच्चा नै भेलै। बंश चलाबै ले वही कनियाय ने अपना पसंद सें सोनमन थान के एक गरीबे आदमी के बेटी सें रामसुभग सिंघ के दोसरो बिहा करवाय देलकै। वहो कत्ते सुन्नर रहै सें त पैहनैं बतैनें छियौं।'

'हाँ–हाँ ठीक छै। आगु बोलो। मंजा (मनोज) बोला।

'पनरो बरस बीती गेलै, सोनमन थान वाला बिहा के भी लेकिन यहू घर सें एक्को बच्चा नै भेलै। अऽ करीब पैंतीस बरसों के उमर भेलो होतै सोनमन काकी के जो सत्तर बरस के उमर में रामसुभग सिंघ मरी गेलै। रामसुभग सिंघ के मरला के पाँच–छः महीना बाद हुनको पैहलो कनियाय भी मरी गेलै। अकेले बची गेलै सोनमन वाली। लंबा–चौड़ा मकान, जमीन जायदाद, सबके मालकिन सोनमन वाली। सब काम नौकरे भरोसा, लेकिन तहियाकरो आदमी बहुत ईमानदार रहै। तें बिधवा भेला पर भी धन–बीत में कोय कमी नै भेलै। जमींदारी बरकरारे।

रात गहराती जा रही थी। अगहन माह के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी अंधेरी काली रात। घने कुहरे की वजह से हाथ को हाथ नहीं दिख रहा है। दूर कहीं से कुत्ते की आवाज आ रही है। झिंगुर की झन–झन के बीच कभी–कभी उल्लू की कर्कश ध्वनि, कभी सियार का हुवां–हुवां। अकेला होता तो डर से मेरी घिग्घी बँध जाती, लेकिन अभी तो दादाजी सहित हम पाँच आदमी घूरे के पास हैं। इसलिए डर नहीं है। दूसरी बात कि मन भी किस्से में रमा हुआ है, इसलिए ध्यान दूसरी ओर नहीं जाता। किस्सा जारी है। बीच–बीच में हम चारो लड़कों में से कोई एक हूँ–हूँ कर देते हैं।

'वही समय में सोनमन वाली नें मंदिर बनबैलकै। गाँव में सात कुआँ, एक पोखर। धरमशाला ओकरे बनैलो छिकै। ई सब करतें–धरतें दस बरस आरो बीतलै, तबतक ओकरो उमर होय गेलै पैंतालीस। वै समय में वें धीरें–धीरें सब लोगो सें मिलना– जुलना शुरू करी देलकै। धीरें–धीरें हँसी–मजाक भी। मेलजोल बढ़लै तऽ लोगें ओकरा सोनमनवाली कहना छोड़ी के सोनमन काकी कहे लागलै। रामसुभग सिंघ गाँव में उमरो में सबसें बड़ो रहै, ऊ कक्का तऽ ओकरो कनियाय काकी–सोनमन काकी। गाँव भर के काकी, बापो के, बेटो के।'

'मेलजोल बढ़तें–बढ़तें हालत ई भै गेलै कि गाँवभरी में बिना सोनमन काकी के कोय काम नै–सब बंद। काकी ऐतै, तभिये काम होतै–गीत मंगल, सुआगत–विदाई, बिहा–सराध, परसौती, छठियारी, जनेऊ, चौठ–चौठारी, सत्तनारायण पाठ सब।'

'जाट–जट्टिन, शामा–चकेवा, राजा सहलेस, रामखेलिया, लोरकाइन, घुघली–घटमा, अल्हा–रुदल, बिहुला– बृजभान, विदापत, करमा–धरमा सब काम में आगु–आगु सोनमन काकी। कोहबर लिखना, मेंहदी रचना, बिहौती गाना यहाँ तक कि बड़ी पारना छै तऽसोनमन काकी। गेंदरा सीना छै तऽ सोनमन काकी। अमौठ बनाना छै, तऽ सोनमन काकी, पापड़ बनाना छै तऽ सोनमन काकी। कि जवान, कि बच्चा, कि बूढ़ा, कि बूढ़ी–सोनमन काकी सें दिनभर में एक्को बेर भेंट नै हुऐ तऽ दिन बिरथा, मन उदास। गाँव तखनी स्वर्ग रहै, स्वर्ग। नै चोरी, नै डकैती, नै बलात्कार, नै झगड़ा–लड़ाय–सब खुश। ओत्तऽ दौलत ओत्ते रौब, लेकिन सोनमन काकी के तनियो टा घमंड नै। एतना दूर तक ते सब ठीके रहलै, लेकिन असली खिस्सा तऽ आबे शुरू हुऐ छै, जेकरो चलतें कि गाँव के ई हाल भै गेलो छै। चोरी, डकैती, लड़ाय–झगड़ा सब सोनमन काकी के ही गाँव छोड़ला के नतीजा छिकै। हवेली

भी भै गेलै भूतहा। कहाँ हुऐ छै आबे गीतनाद, हँसी–ठिठौली, गाँव नरक भै गेलो छै, नरक।'

'हाँ–हाँ, आगु सुनाबो न कि कैहनें सोनमन काकी गाँव छोड़ी के चल्लो गेलै।' मैं बेसब्र होकर बोल पड़ा।

दादाजी सुनाने लगे, 'अंगरेज के मदद करै के काम राय बहादुरे के टैम तक भेलै। ओकरो बाद ते रामसुभग सिंघ अंगरेज से मिलै, लेकिन तरे–तर मदद करे लागलो रहै सुराजी के। हुनको मरला के बाद सोनमन काकी भी सुराजी के ही मदद में रहलै, लेकिन अंगरेज लाट साहब के हवेली पर आना, खाना–पीना। पहिलकरे रं रहै। यहे बात गाँव ले काल भे गेलै।

'जेना सीता मैया पर आरोप लागलै, ओन्हें कोय सोनमन काकी के संबंध में भी बोली देलकै कि लाट साहब के संगों में गलत संबंध रहै। जै दिन सोनमन काकी ई बात जानलकै, वही दिन गाँवभर के आदमी के बोलाय के, जेकरो जत्ते बड़ो परिवार, ओकरा वही हिसाब सें दू बीघा, चार बीघा, पाँच बीघा करीके सब जमीन दान करी देलकै। धन–संपत्ति सब, सरबस दान। दानी राजा कर्ण। महादानी सोनमन काकी।'

'अगला दिन, हवेली खाली, सोनमन काकी गायब। यहाँ खोजो, वहाँ खोजो, कहीं नै। सब बियाकुल, सब पागल। महीनों बीती गेलै, काँही कुछ पता नै, कहाँ गेलै, कहाँ नै। लोगें यहे लांछना लगैलकै कि लाट साहब के साथें भागी गेलै। कोय कहै–लाटे साहब कन छै, देखिनें छियै। कोय कहै देवदासी भै गेलो छै। कोय कुछ, कोय कुछ, जत्ते मुँह ओतने बात।

दादाजी ने इन सब बातों को नकारते हुए अपनी जानकारी पर जोर देते हुए कहा कि सबसे परमानिक बात ई छिकै कि ऊ सुराजी भै गेलो रहै। भेष बदली–बदली के सुराज के काम करै रहै। भेषे बदली के लाट साहब कन नौकरानी बनी के रही गेलै आरो खाना में जहर देकै ओकरो जान ले लेलकै। एक बेर तऽ गलत रास्ता बताय के दू सौ अंगरेज सिपाही के दलदल में फँसाय के मारि देलकै। कोय–कोय ते कहै छै कि गोली भी चलाबै रहै, अंगरेज के खजाना आरो हथियार लूटै ले डकैती भी करै रहै। घोड़ा पर भी चढ़ै रहै–साक्षात महारानी लछमी बाई, सोनमन काकी। अंगरेज सरकार नें ओकरा पकड़ै ले ईनाम भी राखनें रहै। जत्ते मुँह ओतने बात। अंगरेजी हुकूमत तक वें केकर्है नै केकर्है, कहीं न कहीं दिखाय पड़तें रहलै; लेकिन यही बीच में देश आजाद भै गेलै आरो ओकरो बाद सें काँहीं केकर्है नै देखाय पड़लै–सुभाचन्दर बोस जकाँ सोनमन काकी।

दादाजी ने एक लंबी साँस ली और लगभग रूँआसी आवाज में बोले–'जो आबऽ, सुतें, खिस्सा खतम भेलै।' दादाजी बोले तो तन्द्रा भंग हुई। तभी दक्षिणी बाँध की ओर दनादन गोलियाँ चलने लगीं। शायद आज फिर कैलू मियाँ गिरोह की तुतली सिंह से भिड़ंत हो गयी है या किसी के घर में डाका पड़ रहा है, पता नहीं। दादाजी के साथ हम चारो भी चुपचाप बिस्तर में घुस गये हैं। सब जल्दी ही सो जाते हैं, लेकिन मेरे दिमाग में भूतहा महल से जुड़ी लोगों की बातें चक्कर काटने लगी है कि वहाँ रात में रोज नाच–गाना होता है–जाट–जट्टिन, शामा–चकेवा। महल में परियाँ हैं जो नाचती हैं, गाती हैं, झूमती हैं, लोरी गुनगुनाती हैं। परियाँ वहाँ से बाहर भी निकलना चाहती है; लेकिन किसी मायावी शक्ति की वजह से वे उन खंडहरों से बाहर नहीं निकल पातीं। उसी मायावी शक्ति के भय से लोग भूतहा महल की ओर नहीं जाते। पता नहीं मायावी शक्ति के कैद से कब मिलेगी उन परियों को मुक्ति। फिर कब होगा इस गाँव में रास–रंग। पता नहीं कब, क्या आप बतायेंगे?

कविता

जिनगी आरॅ अखबार

अशोक शुभदर्शी,
पंजबारा, बाँका (बिहार)
9835731018

जिनगी नै होय छै
कल के अखबारों जैसनों बासी
पुरानों अखबार जैसनों
हरगिज नै

जेकरा रखलों जाय छै
घरों के कोना–कोना में समेटी कें
बेचै लें
औने–पौने दामों में
ठेला वाला के पास
या कोय पड़ोसी मांगै लें ऐला पर
ओकरा मुफ्त में दै लें वास्तें

जिनगी नै होय छै
आजकों अखबार के जैसनों
जे काफी होय छै
रुलाय दै वास्तें

सुबह–सुबह ही
जिनगी बदली जाय छै
बदली रहलों दिनों नांकी
जागै छै रोज
सुबहे नांकी
चहकी रहलों चिड़िया नांकी

जिनगी नया होय जाय छै
जेनां
जनम लेतें बच्चा
उगी रहलों कोंपल
आरो खिली रहलों फूलों कें साथ

जिनगी साथों में राखै छै
अपनों बीतलों समय कें
अपनों स्मृति के तहखाना में
जलावन नांकी

जें ओकरा लै जाय छै
पूरा ओकरा लै जाय छै
पूरा तरोताजा बनाय कें
आवै वाला कल के तरफें

जिनगी में दुख होय छै
आरो यहे सच छकै
मतुर जिनगी नै छेकै
अखबारों में छपलों विज्ञापन।

खरसूप

सुधीर कुमार प्रोग्रामर
सुलतानगंज, भागलपुर (बिहार)
मो0–9334922674

बाढ़ के पानी प्रलय मचैनें हाँथ–गोड़ समेटी चुकलोॅ रहै। टूटलोॅ लोग हिम्मत करी केॅ बाढ़ के निशानी मेटाबै के जोगाड़ में लागी गेलै। दुर्गा मेला कादोॅ–किच्चड़ के बीच सलटी गेलै। बची गेलै दिवाली, काली आरो छठ। सब परब खर्चे वाला। मोटामोटी हिसाब लगैला पर गश लागी जाय। लगॉन–बझॉन अलगे। जों हय सिनी सें कोय बेफिकर रहै तेॅ छोटका–छोटका बुतरू। बाढ़ सें ढहलोॅ–ढनमनैलोॅ घोॅर–दुआर साटै–मुनै में भिड़ी गेलै। खद्धा सें केपी ढुअै में जुटी गेलै। कोय मौनी में तें कोय डेकची में। घोॅर के जर–जनानी घांस–भूसा के आलन मिलाय केॅ साटे–मुनै के कामों में मगन होय गेलै। दिवाली के पहिन्हैं ऐंगना–घोॅर एकदम चकाचक। कर्जा–बियान करी केॅ तेल, दीया, बत्ती, संठी, खिलौना, लाबा, छुरछुरिया, पड़ाका मनें जेकरा जे जुड़लै किनलकै।

एक घर ऐसनोॅ भी रहै जेकरा ई सब सें कोय लेना–देना नै रहै। ऊ रहै गोवर्धन के घोॅर। असकल्लोॅ जान! गोयठा पैलोॅ तीन साँझ। नै उधो सें लेना, नै माधो केॅ देना। बस सिझाना आरो खाना। धोती लपेटी के सोना। डोभा में दिशा–मैदान, बबूली के दत्तन काटना, गोभना आरो तीनबटिया पर पलथी मारी केॅ बेचना बस।

आय बड़की सुकरात रहै। गोवर्धन देह–गात में मांटी रगड़ी केॅ नहैलकै। काम–धाम एकदम बंद। जबानीके याद आबी गेलै जब छोटका भाय के साथें दीया लूटै के जोगाड़ में पहिन्हैं सें लागी जाय रहै। हालाँकि आय सौंसे टोला घुरी केॅ पुरनका दोस्त–मोहिम सें मिललै। दोसरा के सजलोॅ घोॅर–द्वार देखी केॅ तन्टा लजैलै आरो मनगर घोॅर लौटी गेलै। मनेमन बतियाबै–चल रे मन! तन्टा आपनोॅ देहरी–द्वार चिकनैलोॅ जाय। नै तेॅ लोगें कहतै कि गोवर्धन एकदम सें अजगरेॅ छै।

घोॅर पहुँचलै तेॅ अजबे खेला। ऐंगना–घोॅर निपाय– पोताय केॅ चकाचक। के दयावान कमियां एत्ते उपकार करी देलकै। मनों में कत्ते रं शंका तरा–उपरी करेॅ लागलै। तब ताँय छोटका भाय के कनियाय लेटैले हाथें माथोॅ पर सड़िया घीचनें निकललै।

गोवर्धन सब बात मनेमन बुझी गेलै। आबेॅ तेॅ आरू फुरसते फुरसत। एक दाव मोॅन करलकै कि छप्पर के बाँतां में खोसलोॅ बटुआ निकाली केॅ कुच्छू दीया–बत्ती बारै के जोगाड़ करलोॅ जाय, मगर निपलका पर चिट्ठा उखड़ै के डोॅर सें नै घुसलै।

धत् तेरी केॅ बटुआ तेॅ डाँढ़े में खोसलोॅ छै। डाँड़ा पर हाथ टटोली केॅ गोवर्धन बेहद खुश होलै। तखनिये सरसरैलोॅ दुकानी तरफ चली देलकै। दस–पनरे डेग गेलोॅ होतै तेॅ देखलकै कि चार–पाँच ठो छौड़ा जुआ खेलै में मस्त छै। दनदनैलोॅ जेरा में घुसी गेलै। गोवर्धन के दखथैं जुआरी सिनी धड़फड़ाय केॅ चट्टी समेटें लागलै। मतर जब गोवर्धन दाँत निपोड़ी के कहलकै कि आय हमरोॅ मोॅन जुआ देखै के करै छै नुनु, तेॅ जुआरी सिनी ठकमकाय गेलै आरो फेरू सें पट्टी लेलकै। डिब्बा में कौड़ी झनझनाबै लागलै। कोय हाथी, कोय घोड़ा, कोय कुच्छू, तेॅ कोय कुच्छू पर पैसा फेंकी केॅ भाग अजमाबेॅ लागलै। जीतै तेॅ मोॅन गद्गद, नै तेॅ निमझान। आय गोवर्धन केॅ भी सनकी चढ़ी गेलै। देखतें–देखतें गोवर्धन बटुआ के एकटा अठन्नी निकाली केॅ कोन चिन्हा पर धरलोॅ जाय सोचिये रहलोॅ छेलै कि तीनमहला वाला मलिकबा के नौकर बुद्धन! गोवर्धन दादा–गोवर्धन दादा कहनें पहुँची गेलै।

गोवर्धन हक्का–बक्का होय गेलै। जीहोॅ के अरमान जीहें रही गेलै। एकदम कठुआय गेलै आरो उठी केॅ डाँड़ा में बटुआ खोंसनें बढ़ी गेलै। तोरहै सें काम रहै गोवर्धन दादा। जिनगी में पहिलोॅ दफे टोकनें रहै बुद्धन। लंबा साँस घीची केॅ गोवर्धन कहलकै–की बात छै, बोलोॅ। बुद्धन बात आगू बढ़ैलकै। हों दा! असल में आय तेॅ सुकरतिया छिकै नी। आबेॅ तेॅ कुच्छू देर में दीया–बाती, हुक्का–पाती सें सब लछमी घोॅर दरिद्दर बाहर करतै। हमरोॅ मालिक के तेॅ सब कुछ छेबै करै गोवर्धन दा, मगर खरसूप नै छै। यहा लेली मालिक भेजलकै कि गोवर्धन के छपरी पर एक टा खरसूप झलकै छै, जो माँगी लान। नै तेॅ बिना खरसूप के दरिद्दर केना निकलतै।

गोवर्धन तनटा ठहरी केॅ बुद्धन केॅ देखलकै, मुस्की केॅ बोललै–से कि रे बुद्धो! मलिकबा के घरोॅ में ढेर दरिद्दर घुसी गेलौ की! कोन देकेॅ दरिद्दर घुसलौ रे मरदे। चारो तरफ सें घेरलोॅ– घारलोॅ एत्ते उच्चो घोॅर–द्वार छै आरो दरिद्दर घुसी गेलै। तहूं नै देखें पारल्हैं। तोय तें हरदम दुआरी पर हियैतें रहै छैं। तबेॅ हुए पारै छौ भाय। बड़ोॅ आदमी के बड़े बात, खैतें–पीतें आधी रात। मगर देखें बुधो! हमरा तेॅ एक्के गो सूप छौ। तोरोॅ मालिक केॅ जों हमरो खरसूप लागै छै तेॅ की कहलो जाय। बुद्धन निराश नांकी बोललै–तबेॅ हमरोॅ मालिक के काम केना होतै, खरसूप के बिना केना केॅ भागतै दरिद्दर?

आबेॅ हम्में की बतैइयोॅ भाय! अच्छा एक काम कर तोरा मालिक के घरोॅ में जेतना दरिद्दर होतौ, सबकेॅ समेटी केॅ राखिहैं। खरसूप में तेॅ चूबी–चाबी केॅ फेरू कुच्छू वहैं गिरी जैतौ, यहा लेली दौरी में उठाय केॅ हमरा घरोॅ में धरी दीहैं। भलें दरिद्दर के जेरबैत दरिद्दर लींगें आबी जैतै।

बुद्धन के उकरू लागी गेलै। तोंय तेॅ एकदम पागले नांकी गप्प करै छौ महाराज!

गोवर्धन तमतमाय गेलै–पागल हम्में छियै। अरे पागल तें तोंय छैं आरो तोरो मलिकबा, जे हमरो घरौआ सूप तोरा दूनोॅ केॅ खरसूप ऐसनोॅ झलकै छौ। आरो उलटे पागल हम्हीं रे, वाह रे अमीरी! बेमतलब के गरजा–गरजी बढ़ी गेलै। पहिलोॅ दफा आकाश आरो पताल में भिड़न्त होलोॅ रहै, एक लोभी तेॅ दोसरो संत। हल्ला सुनी केॅ हिन्नें मलिकबा निकललै, हुन्नें जुआ खेलबैया छौड़ा सिनी। बड़ा गजब बात रहै। जे गोवर्धन एकदम गुम्मा बनी के जिनगी बिताय रहै, आय मलिकबा पर भी बमकी गेलै। मनगर छप्पर सें सूप लानी के कहलकै–देखोॅ तेॅ तोरासिनी भाय, एकदम नैगर सूप छै आरो मलिकबा के साथें बुद्धना भी दही में सही मिलाय रहलोॅ छै। साँप–छुछुंदर के फेरा सुननें तेॅ छेलै, आय आपन्हैं फँसी गेलै। कखनूं मलिकबा के आगू में जाय, तेॅ कखनूं गोवर्धन के तरफ आबी केॅ दाँत कीचै। मगर गोवर्धन तेॅ आय कृष्ण–कन्हैया के गोवर्धन के तरह अटल होय गेलोॅ रहै। मलिकबा के अनहोनी के संदेशा होय गेलै। बुद्धन केॅ इशारा करी केॅ बोलाय लेलकै आरो भीतर सें हवेली के फाटक लगाय लेलकै

सरपंच मोंछ अमेठी केॅ भीड़ के तरफ मुँह करी केॅ बोललै–'तुमलोग ताकता कोनची था। धड़धड़ा दिया काहे नू सार को।'

गोवर्धन पिनकी गेलै। हे हो सरपंच साहेब! तोंय जा, तोरा सिनी के नाटक देखतें–देखतें हम्में एकसठ पार करलौं। हय सब दाव–पेंच आपन्हैं जीमा में राखौ। लोग गोवर्धन के हिम्मत देखी केॅ आरो दलील सुनी केॅ दंग रही

गेलै।

आखिर मजलिस टूटलै लोग अच्छा–बेजाय गपियैनें आपनो ँ–आपनों घोंर जाय कें दीया–बाती बारे में लागी गेलै। गोवर्धन भी मोमबत्ती बारी कें आपनों देहरी पर गाड़ी देलकै आरो टटिया सटाय कें हिन्नें–हुन्नें देखै लें निकली गेलै।

घंटा भर होलो होतै कि आगिन लगै के हल्ला होलै। आगिन कहीं दोसरा कन नै, बल्कि गोवर्धन के झोंपड़ी में लागलो रहै। एकदम अजलत कोय आगिन बुताबै में बौला, तें कोय मलिकबा के घरों में आगिन लगाबै के फिरांक में। कोय बगल गे घोंर बचाबै लागलों तें कोय अधजरुओ समान उड़ाबै के फेरा में। तनी ठो घोंर आगिन लेली आठ–दास मिनट के खेल रहै। सब स्वाहा। बची गेलै पनधुइयाँ। मगर गोवर्धन दा कहाँ छै। कन्हों नजर नै ऐलै। अरे! हेबें हुन्नें देखों देवाली में सटलों गोवर्धन दा। लागै तें जित्ते छै। निकाल–निकाल। अरे देख! गोवर्धन लेटमसेट हाथो में सूप लेनें माँतलों आबी रहलों छै। अरे नै भाय! हम्में नै माँतलों छियै आरो नै ई सूप रहलै। आबें ई अब्बलका खरसूप होय गेलै। ले रे बुद्धन! हला हो मालिक! खरसूप आरो निकालों आपनों घरों के दरिद्दर। हाँ, हाँ, हाँ, पहिलों दफा ठहाका मारलकै गोवर्धन।

आगिन तें ठंढाय गेलै, मतर बात ढेर गरमाय गेलै। लोगों कें मलिकबा सें बदला लैके अच्छा जोगाड़ हाथ लागी गेलै। सब बिना बोलैनें आबी कें पंचैती करें लागलै। सरपंच के भी बोहनिये रहै।

मतर मलिकबा नें होशियारी सें काम लेलकै। बात बढ़ला सें पहिन्हें आगुआय कें बोललै।

देखों पंचकिसान! एतना बड़ों घटना में गलती हमरे छै। हम्हीं बुद्धन कें खरसूप लें भेजनें छेलियै। पता नै कोन कारण सें एत्ते बड़ों खेल होय गेलै। आबें ओकरा पर तू–तू मैं–में करला सें कोय फायदा नै। जे लिखलों रहै, होय गेलै। आबें गोवर्धन दा आरो आपनेंसिनी जे फैसला करबै हम्में एकदम मानै लेली तैयार छियै। बिहान्हें सें हम्में गोवर्धन दा के घोंर छप्पर वाला नै पक्का वाला बनाय देबै। आरो हिनकों परबरिश के भार हम्में अखनी सें उठैबै। मलिकबा के नेक फैसला सुनी कें सबकें अचंभा लागी गेलै।

मतर हों–हों, जे कि हिनको मरला पर घोंर–जमीन सब तोरों भाग में?कोय टपकी गेलै।

फेरू बात यहाँ आबी कें सम्हरलै कि नय भाय हिनकों देख–रेख गोवर्धन के छोटका भाय–भभौउ करतै आरो बाद में सब कुछ गोवर्धन दा के परिजन के होतै। हेकरो अलाबें ग्रामसभा जे फैसला करी देतै ओतना टा एकमुश्त जमा करी देबै।

ऐसने होलै भी। बिना झंझट झमेल के सब काम सलटी गेलै। गोवर्धन जब तक बचलै खरसूप के जोगी कें राखलकै आरो पूजा करतें रहलै।

दुखी मानवता

डॉ. शिवनारायण, पटना,
मो0– 9334333509

साँझकों झुटपुटा में एक ठो बुढ़िया
जे हमरों सिरहाना में हौले सें
आबी कें बैठी जाय छै
अपना कें मानवता बताय छै

हम्में ओकरा पर बरसी पड़ै छी
कैन्हें कि हम्में लिखै लें चाहै छी
एक ठो अदद कविता अपनी प्रेमिका के नामें
मतर बुढ़िया के मुरझैलों आँख
रुक्खों खेखरों आरो
चेहरा पर पसरलों उमिर के झुर्री बीचें
दुक्खों के लहर हिलोर मारतें रहै छै
ओकरों कमजोर हाथों पर
ओकरों मटमैलों आँचल
पसरलों रहै छ
हम्में देखै छियै
लेबनान, ईरान आरो पंजाब
कोय घायल कबूतर नाँखि
खून सें लथपथ अँचरा में पड़लों छै
हम्में ओकरों आँखी में झाँकै छियै
जहाँ अथाह शून्यता कें छोड़ी
आरो कछुवो नै हुऐ छै
ओकरों बड़की–बड़की
बुढ़ैलों–थकलों आरो

एकदम सें खुल्ली आँख
न जानौं, कै ठां टिकलों रहै छै
हम्में मानवता छिकां
हम्में मानवता छिकां
जे कोय बबूले नाँखि फूटतें रहै छ
अपनों गोड़ों के रिसतें खून लें
शायत ओकरा कोय परवाह नै छै
हमरा लागै छै
ठीक वहीं ठां
परमाणु मिसाइल सिनी
कील नाँखि धँसी गेलों छै
आरो ओकरों पीठी पर
औजारों के अनगिन कारखाना
सूइये नाँखि चुभी रहलों छै।

अँचरा में पड़लों पंजाब कुर्रहें लागलों छै
बुढ़ियां ओकरा देखलकै
ओकरों आँखी में कुछ होबै के भाव छै
जेना मरुभूमि में बूँद भर पानी वास्तें अरमरैतें
कोय भटकी गेलों यात्री के
साथी के आँखी में होय छै
एकटा बेबस भाव

मानवता के हालत
कँपाय दै वाला छै
हम्में कुछ कहै लें चाहै छियै
मतरकि हमरों संवदेना
घन्नों सें घन्नों होलों जाय छेलै
आरो आँखी के आगू
कुहासों फैलें लागलों छेलै
कंठों में शब्द जेना घुटी–घुटी जाय
हम्में उमतैलों रं उठी ठाढ़ों भेलियै
हम्में चाहलियै कि ओकरों घाव सहलावौं
कि तखनिये वहू उठी ठाढ़ों भेलै
हमरा सें कुछ कहले बिना
चली देलकै
आरो संझकों झुटपुटा में अलोपित होय गेलै

लहू रों ही दाग सिनी
अभियो वहीं ठां छेलै
जे ओकरों रिसतें गोड़ों सें बनलों छेलै
आरो ऊ संझकी अंधरिया में
करिया दिखाय रहलों छेलै।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303